RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2023-25

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 60 अंक : 04 प्रकाशन तिथि : 25 मार्च कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 अप्रेल, 2023

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

सूत्र तेरा, नृत्य मेरा, यंत्री तू, मैं यंत्र तेरा।
मैं तो तेरा ही सदा हूँ, जीत दो या फिर हरा लो।।

नवरात्रि के पावन पर्व एवं राम नवमी की सभी स्नेहिल बंधुओं को हार्दिक शुभकामनाएं।।

IAS / RAS

तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड
Spring Board

Springboard Academy,
Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda,
Gopalpura, Bypass Jaipur

Website : www.springboardindia.org

नवरात्रि की हार्दिक शुभकामनाएं

भारत की सबसे बड़ी इलेक्ट्रोनिक स्कुटर रेंज अब बाँसवाड़ा में

OKINAWA SCOOTERS
Power the Change

लोन सुविधा उपलब्ध है

सब्सिडी उपलब्ध है

एक्सचेंज ऑफर
दो पहिया पेट्रोल वाहन लाए, इलेक्ट्रोनिक स्कूटर ले जाएं

HIGH SPPED ELECTRIC SCOOTERS | POLLUTION FREE VEHICLE | SMOOTH DRIVING ON HILLS & VALLEY | SMILES FOR MILES 20 PAISA PER/KM

5 साल का बीमा & RTO के साथ* | एक चार्ज में 160 किमी* | 3 साल की वारंटी* | पूर्ण चार्ज के लिए 2 यूनिट बिल*

70-90 किमी प्रति घंटे की रफ्तार* | भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त* | पोर्टेबल बैटरी* | 20 पैसे/किमी*

Authorised Dealer
NAKSH ASSOCIATE

प्रताप सर्कल, केन्द्रीय विद्यालय के पास, उदयपुर रोड़, बाँसवाड़ा 8440999001

बाँसवाड़ा जिले के तहसील स्तर पर सब डीलरशिप के लिए संपर्क करें।
देवेन्द्र सिंह चौहान, 9828064351

पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त बनाएं, इलेक्ट्रोनिक वाहन अपनाएं

संघशक्ति

4 अप्रैल, 2023

वर्ष : 59 अंक : 04

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	चैनसिंह बैठवास	06
पृथ्वीराज चौहान	विरेन्द्रसिंह मांडण	08
मर्यादा के दृष्टिकोण से भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण	स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी संकलन : डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा	10
इन भावों के दरिया में तूफान है	सूरतसिंह कालवा	13
शिक्षा का महत्त्व	स्वामी धर्मबन्धु	17
महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा	भँवरसिंह मांडासी	21
सत्सङ्गति मुक्ति से भी बढ़कर है	जयदयाल गोयन्दका	23
विचार सरिता (अशीतिः लहरी)	विचारक	29
होली की राम-राम	क्षिप्रा लोहरवाड़ा	30
तुष्टीकरण की नीति : शिक्षा बंटाढ़ार	गुमानसिंह धमोरा	31
गुब्बारा	नीरसिंह सिंघाना	32
अपनी बात		33

समाचार संक्षेप

क्षत्रिय इकोनॉमिक फोरम :

श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन के तत्वावधान में 25 फरवरी को जयपुर स्थित मैरियट होटल में क्षत्रिय इकोनॉमिक फोरम का कार्यक्रम आयोजित हुआ। इस कार्यक्रम में राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, आंध्रप्रदेश, तेलंगाना राज्यों से समाज के उद्यमी सम्मिलित हुए। समाज के उद्यमियों को एक साथ बैठाकर उनकी ऊर्जा को सामूहिक स्वरूप प्रदान कर समाज के हित में प्रयुक्त करने के उद्देश्य की ओर पहले कदम के रूप में इस कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

श्री क्षत्रिय युवक संघ के संरक्षक माननीय भगवानसिंहजी रोलसाहबसर ने कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए कहा कि हमारा व्यापार, हमारा उद्योग, हमारा राजसत्ता में हिस्सा, अधिकारी वर्ग में हिस्सा है उसके लिये भाव यह हो कि यह सब ईश्वर की देन है अत: इसके मालिक न बनें, इसे उसी को समर्पित कर दें, जिसने दिया है। इसका तरीका है सेवा। हमें यह अवसर सेवा के लिये दिया है। अहंकार न पालें। सेवा ही सच्चा सदुपयोग है। हमारा परिचय होने के बाद बिछुड़ना कष्टदायक होता है लेकिन हम जीवनभर तो साथ रह नहीं सकते। पर श्री क्षत्रिय युवक संघ ने हमारे हृदय में जो स्थान बनाया है, उसे हम सुस्थिर कर लें तो फिर बिछुड़ने पर कष्ट नहीं होता। उसके लिये आवश्यक है सातत्य। सतत साधना चलती रहे, उसमें व्यवधान न आने दें।

प्रताप फाउण्डेशन के संयोजक द्वारा संगठन का महत्त्व बताते हुए संगठन की शक्ति के निर्माण की आवश्यकता बताई। हम सब एक परिवार हैं, सम्पर्क की निरन्तरता बनी रहे। संवाद बना रहे तो विवाद नहीं ठहर सकता। जो शक्ति बने उसका सदुपयोग ही हमारे क्षत्रियत्व की पहचान बनेगी।

एम.एन.आई.टी. के प्रोफेसर अजयपालसिंह ने बताया कि प्रगति के मूल्यांकन के आधार आर्थिक, सामाजिक और राजनीति में वर्तमान समय में भारत में महत्त्वपूर्ण और व्यापक रूपान्तरण हो रहा है। अत: इसे भली प्रकार समझकर उसके अनुरूप अपने आपको तैयार करके ही हम विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सकते हैं। ज्वैलरी क्षेत्र में उद्यमी सुनीता शेखावत ने साक्षात्कार में अपनी यात्रा के संकल्प और संघर्ष को बताया। बैकपैकर हास्टल्स की सबसे बड़ी शृंखला जॉस्टल के सह संस्थापक और निदेशक चेतनसिंह ने इस क्षेत्र में नवाचार के अनुरूप बताये। वुडन-स्ट्रीट के सह-संस्थापक तथा मुख्य कार्यकारी लोकेन्द्रसिंह राणावत ने साहस और जोखिमपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता की आवश्यकता बताई।

प्रारम्भ में रेंवतसिंह पाटोदा ने श्री क्षत्रिय युवक संघ और श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन के उद्देश्य और कार्यप्रणाली की जानकारी दी तथा कार्यक्रम की भूमिका समझाई। भारत के प्रत्येक राज्य में क्षत्रिय इकोनॉमिक फोरम की स्थापना और प्रत्येक जिले में इसकी इकाई गठित करने के सम्बन्ध में कार्ययोजना बनाई गई।

अन्य कार्यक्रम :

श्री प्रताप फाउण्डेशन के तत्वावधान में सीकर के रामलीला मैदान में छठा किसान सम्मेलन 26 फरवरी को आयोजित किया गया। प्रत्येक समाज के वक्ताओं ने किसान की समस्याओं के बारे में चर्चा की। कार्यक्रम में परस्पर संवाद, एकता, मिलकर-विकास का आधार तैयार करने पर जोर दिया गया। इस अवसर पर माननीय संरक्षकश्री का भी सान्निध्य प्राप्त हुआ। संघ के संभागों की कार्यशाला, विभिन्न स्थानों पर स्नेह मिलन, सम्पर्क यात्रा, कैरियर काउंसलिंग कार्यशाला, प्रांतीय बैठक, शिक्षकों के कार्यक्रम तथा श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन के कार्यक्रम सम्पन्न होते रहे हैं। ●

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च प्रशिक्षण शिविर, आलोक आश्रम बाड़मेर में 28 मई, 2022 को माननीय संरक्षक श्री भगवानसिंह जी रोलसाहबसर द्वारा प्रदत्त प्रभात संदेश}

ईशोपनिषद का प्रथम मंत्र है -

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्याम जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजिथा: मा गृध: कस्यस्विद्धनम्।।

अर्थात्- सब कुछ भगवान का है इस पर गिद्ध की दृष्टि मत रखो। इस मंत्र की बात हम कर चुके हैं। यह बात सबके समझ में आती नहीं है। यह ऋषि-मुनियों की अवस्था में प्राप्त किया हुआ, अनुभूत किया हुआ ज्ञान है जो वेदों और उपनिषदों में उतरा है। हमारी इस प्रकार की अनुभूति नहीं है इसलिए समझने में थोड़ी कठिनाई होती है। इसलिए पहले मंत्र की व्याख्या करने के बाद में दूसरे मंत्र की व्याख्या करने की इच्छा रह गई थी। मंत्र है-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समा:।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

भगवान ने हम सभी को धरती पर भेजा है, जीवन प्रदान किया है तो हम जीवित रहें। मंत्र कहता है, सौ साल तक जीवित रहें, सौ साल तक जीवित रहने की कामना करें। सौ साल तक जी करके क्या करेंगे? करणीय कर्म करने हैं। हमारे लिये जो भगवान ने नियत किया है वह कर्म करणीय है। तो करणीय कर्म करते हुए सौ साल तक जीएँ, यह चाह हो। श्री क्षत्रिय युवक संघ का काम तभी तो हो सकेगा जब आप जीवित रहें। तो सौ वर्ष तक जीवित रहें, लोगों को प्रेरणा देते रहें। लेकिन जीवित रहने का उद्देश्य क्या है? सौ वर्ष तक करणीय कर्म करने हैं। जिस काम के लिये भगवान ने हमको भेजा है, वही कर्म करते हुए जीवित रहने की कामना बुरी नहीं है। इसलिए सौ वर्ष की चाह हो। करणीय कर्म करने से कर्म हमको बाँधते नहीं हैं। ऐसे कर्म हमको मुक्ति की ओर ले जाते हैं। ईश्वर की ओर ले जाते हैं। पहला मंत्र ईश्वर की ही बात करता है और दूसरा मंत्र जीवित रहने की बात करता है ताकि आप ईश्वर तक जा सकें।

आज एक दूसरे मंत्र की बात करना चाहते हैं, वह यजुर्वेद का है। हमारी जो संक्षिप्त दैनिक यज्ञ विधि पुस्तक है, उसमें यह मंत्र है -

ओ३म् तत् चक्षुर्देवहितं पुरस्तात् शुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरद: शतं जीवेम शरद: शत ँ श्रणुयाम,
शरद: शतं प्रब्रवाम शरद: शतमदीना: स्याम,
शरद: शतं भूयश्य शरद: शतात्।।

सौ वर्ष तक हमारी इन्द्रियाँ काम करती रहें तो जीने में कोई सार है। आँखों से सौ वर्ष तक देख सकें, कानों से सौ वर्ष तक सुनते रहें, भगवान की चर्चा सुनते रहें, तब तो जीने में सार है। गालियाँ सुनने के लिए नहीं, यह सांप का बिल नहीं है। जबान से हम बोलते रहें, कीर्तन करें सौ वर्ष तक। अनर्गल बातों को करने के लिये जीवन हमको नहीं मिला है। तो सौ वर्ष तक देखते रहें, सौ वर्ष तक सुनते रहें, सौ वर्ष तक बोलते रहें, सौ वर्ष तक चलते रहें, इसमें कोई कमी न हो। यह भगवान से प्रार्थना है कि हे भगवन्! मुझे जिन्दा तो रख लेकिन मेरी इन्द्रियों को मजबूत बनाओ ताकि मैं सौ वर्ष तक काम कर सकूँ, श्री क्षत्रिय युवक संघ का काम कर सकूँ।

कमजोर इन्द्रियों वाला, कमजोर शरीर वाला, कमजोर मन वाला, कमजोर बुद्धि वाला संघ का काम नहीं कर सकेगा। हमको यदि संघ का काम करना है, कहता हूँ करना ही है, यह आपको संघ की आज्ञा है, भूलो मत इसको। आपका यह दृढ़ संकल्प है कि मैं

(शेष पृष्ठ 20 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

महापुरुष के कर्म और सामान्य व्यक्ति के कर्म में अन्तर है। सामान्य व्यक्ति अपने स्वार्थ, भोग और ऐश्वर्य के लिये कर्म करता है जबकि महापुरुष निष्काम भाव से ईश्वर के निमित्त कर्म करता है। निष्काम 'कर्म योग' की साधना है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की कार्य पद्धति 'कर्म योग' से प्रारम्भ होती है, इसलिए पूज्य श्री तनसिंहजी ने निष्काम भाव से कर्म करने की बात कही। श्री क्षत्रिय युवक संघ का कार्य ईश्वरीय कार्य है, इसलिए श्री क्षत्रिय युवक संघ निष्काम भाव से ईश्वर के निमित्त कर्म करता है।

प्रत्येक महान कार्य का सम्पादन करने के लिये ईश्वर से 'योगात्मक एकता' स्थापित होना आवश्यक है। ईश्वर से एकता स्थापित होने पर महान कार्यों की पूर्ति सरलता से हो सकती है, इसलिए पूज्य श्री ने कहा–''मैं अपनी चिन्तनधारा भीतरी जगत की ओर ले जाना चाहता हूँ।''

जब तक व्यक्ति का अन्तःकरण, अन्तःज्ञान और अंतर्दृष्टि परम से नहीं जुड़ जाती, तब तक ईश्वर से एकता सम्भव नहीं और उसकी स्मृति में बाहरी बातें ज्यादा रहती हैं, इसलिए पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा–

राहों को दिखाया है भीतर ही नहीं देखा
तम नष्ट किया भीतर नव ज्योति की नहीं रेखा
अब अन्तर के तप की धूनी को रमाना है
जो बाहर दिखता है, भीतर भी दिखाना है
निज को न बनाया तो जग रंच नहीं बनता।

पूज्य श्री तनसिंहजी का अन्तःकरण, अंतःज्ञान और अन्तर्दृष्टि परम से जुड़ी तो वे सत्य की खोज में लग गये। अब उनकी स्मृति में बाहरी बातें ज्यादा नहीं रही, उनके प्रति उनका कोई आकर्षण नहीं रहा। इस बात को उन्होंने इस तरह प्रकट किया –

जीने के बहाने मुझे आये नहीं,
रंग बिरंगे रंग मुझे भाये नहीं
तेरे ही रंग में जीने के ढंग हैं,
प्राणों में प्राण को जोड़ दे।''

अंतःकरण के क्षेत्र में जिस तत्व से सर्वप्रथम उनका साक्षात्कार हुआ, अंतःज्ञान और अन्तर्दृष्टि में उन्होंने जो पाया, उनकी महिमा उन्होंने गायी है, जो यशोगान किया है आत्म विभोर करने वाले उनके ये उद्‌गार, उन्हीं की जुबानी –

''मेरे वे क्षण जिसे मैं अपने जीवन का प्रभात कह सकता हूँ सबसे पवित्रतम क्षण थे। वह सारी पवित्रता जिसके चिन्तन मात्र से आज मैं आत्मविभोर हो उठता हूँ, तेरे ही भण्डार से दान के रूप में वह मुझे प्राप्त हुई। इस पवित्रता को लेकर मैंने जिस पत्थर को छुआ वह आदमी बन गया। जिस शब्द को पकड़ा वही सत्य बन गया और जिस सम्बन्ध को लिया वही मेरे लिये संसार का सबसे प्रिय सम्बन्ध हो गया। मैंने अपने जीवन में केवल एक ही सत्य उपार्जित किया है और वह यही कि भिखारियों का समाज यदि कभी धनवान बन सकता है तो तेरे ही धन से, यदि महान बन सकता है तो तेरी ही महानता से और यदि पवित्र बन सकता है तो मेरी ही पवित्रता से।

''तुम मेरे भिखारी समाज की वह पूर्व सम्पत्ति हो जिसे उपार्जित करने के लिये न जाने कितने धनिकों ने अपने सभी प्रकार के धन को लुटा कर भिखारी बनना स्वीकार किया। जब कभी मैं तुम्हारी इस गौरवशाली

परम्परा का चिंतन करता हूँ तो लगता है यदि कभी जन्म लूं तो इसी भिखारी जाति में ही जन्मू। यदि कुछ कहूं तो इसी समाज की गौरवगाथा कहता रहूँ और यदि सोचूं तो केवल यही कि वह कौनसा धन है जिसके आने के बाद में भिखारी नहीं रहूँगा। ..... बस इस सत्य के उपार्जन पर ही मैंने अपना जीवन सर्वस्व दांव पर लगाया है।

''तुम्हारे लिए मैंने राजा के सदावृत में छिप-छिप कर आँसू बहाये, सेठ के सदावृत में प्रकट में आँसू बहाये और उस समय मुझे कुछ आँसू बहाने वाले का साथ मिल गया।

''तेरे यशोगान में कवियों की कल्पनाएँ थक गई। लेखकों की लेखनियाँ टूट गई और कलाकारों की कलायें हार मान गई।''

पूज्य श्री तनसिंहजी की कार्यप्रणाली से यानी श्री क्षत्रिय युवक संघ से जो लोग प्रभावित होकर समर्पण भाव से जुड़े, निष्काम भाव से उनके सहयोगी बने, उनके समबन्ध में पूज्य श्री ने जो कहा, उन्हीं की जुबानी-

''भगवान राम ने बन्दर और भालुओं के लिये कहा कि जिन्होंने मेरे लिए सर्वस्व दिया वे मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं, परन्तु मैं यदि आज अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ कहूँ तो यही कहूँगा कि वे मुझे राम से भी अधिक प्रिय हैं। पता नहीं क्यों उन्होंने समर्पण भाव से मेरे एक-एक उपदेश को प्रमाण मानकर जीवन के खेल खेलने शुरू किये? मैंने यदि कहा कि दिन है तो उन्होंने बाहर जाकर सूर्य को देखने की चेष्टा ही नहीं की और यदि कहा कि रात है तो आँखें बन्द कर जाज्वल्यमान सूर्य को अनदेखा कर दिया, जिसे अच्छा बताया उसकी बुराइयों को भी वे पी गये और जिसे बुरा बताया उसे अच्छा सिद्ध होने का अवसर ही नहीं दिया, तभी मेरे अन्त:तत्व! कितना ऋण है तेरा मुझ पर कि उसके पूरे होने की सम्भावना ही नहीं। यमराज के सामने जाकर मुझे सबसे बड़ा डर है तो यही कि कहीं उनमें से एक के प्रति भी विश्वासघात का आरोप न लग जाए।

''भगवान राम के केवल एक ही हनुमान थे और मैं अपने चारों ओर सैकड़ों हनुमान देखता हूँ। भगवान राम के एक ही भरत थे और मुझे इस संसार में भरत के सिवाय दूसरे कोई दिखाई नहीं देते। भगवान राम एक लक्ष्मण के लिये संजीवनी चाहते थे और मैं सैंकड़ों के लिये चिन्तित हूँ। भगवान राम व मुझ में अन्तर इतना ही है कि वे एक आराध्यदेव थे और मैं उनके वंश के अदने से अदने व्यक्ति का भी भक्त हूँ। यह सब तेरी ही कृपा का फल है।''

पूज्य श्री तनसिंहजी का अन्त:करण के क्षेत्र में जिस तत्व से सर्वप्रथम साक्षात्कार हुआ उस तत्व के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्होंने जो कहा, उन्हीं की जुबानी -

''तुमने मेरे जीवन में साधनों का दैन्य उपहार के रूप में दिया पर मेरे लिये तेरा श्रम वरदान ही सिद्ध हुआ। मैं सोचता हूँ यदि भिखारी न होता तो भीख माँगना मुझे कभी नहीं आता और मेरे अन्त:तत्व! मैं हूँ एक अद्‌भुत भिखारी जो अपने दानियों से वही वस्तु माँगता हूँ जिसे उसने अपने लिये रख छोड़ी हो। इसलिए दानियों का सारा दान अनदेखा ही पड़ा रहता है और मेरी नजर उस छिपी हुई वस्तु पर ही रहती है। तब तक पिंड नहीं छूटता जब तक दानी अपने आपको भिखारी नहीं मान लेता।

''तुमने मेरे जीवन में कार्य की कठिनता, कर्तव्य की निर्ममता और भले व बुरे में समझ के भाव का दान दिया है, पर लगता है तुमने मेरे लिए प्रेय की अपेक्षा श्रेय मार्ग ही चुना और मैं इस चुनाव के लिये

(शेष पृष्ठ 20 पर)

गतांक से आगे

पृथ्वीराज चौहान

– विरेन्द्रसिंह मांडण (किनसरिया)

पृथ्वीराज के राज्याभिषेक का वर्ष व गोरी के पसरते पंजे

फरिश्ता[1], मिन्हाज[2] व अन्य अधिकतर इस्लामी लेखकों ने शहाबुद्दीन गोरी के मुल्तान से लेकर कासिंद्रा तक चले इस अभियान का समय हिजरी 574 अर्थात् 1178 ई. बताया है।

उसी कालक्रम में गोरी के विध्वंस पथ की ज्वालाएँ शान्त होने पर वहाँ स्थित बहुत से जैन और हिन्दू मंदिरों में खंडित होने जैसे कारण बता जीर्णोद्धार, पुनर्निर्माण, विग्रह और पुन:प्रतिष्ठा आदि के अभिलेख 1178 और 1179 ईस्वी से पाए जाते हैं। जैसे कि किराड़ू के एक शिव मंदिर से अक्टूबर 1178 ई. का शिलालेख जो 'मूर्तिरासीत् सां तुरुकैर्भग्ना' द्वारा घोषणा करता है कि तुरुष्कों (म्लेच्छों) के मूर्ति भंग करने के बाद नई मूर्ति की प्रतिष्ठा की गई[3]। किराडू का ये शिलालेख भीमदेव को चौलुक्यों का राजा बताता है। किन्तु इस विषय पर प्रकाश डालते सभी भारतीय ग्रन्थ और शिलालेख हमें यह भी बताते हैं कि कासिंद्रा के युद्ध के कुछ समय बाद ही अवयस्क चौलुक्य राजा मूलराज द्वितीय की मृत्यु हुई और उनके छोटे भाई भीमदेव (भोला भीम) राजा बने।

सो युद्ध और इस शिलालेख के बीच मूलराज का परलोक गमन और भीमदेव का सिंहासन पर आकर राजकाज सम्भालना भी सम्मिलित करना होगा जो कि कुछ माह तो लेगा ही। इससे भी युद्ध के 1178 ई. में पूर्वार्ध में होने की पुष्टि हो जाती है।ऐसे पुन:निर्माण कार्य उन मंदिरों के लिये भी हुए जो मात्र 20 वर्ष पहले ही बने थे। इस प्रकार के कार्य आए दिन नहीं होते थे, इसीलिये इनका उल्लेख शिलालेखों द्वारा किया जाता है और ये प्राय: गिने-चुने ही होते हैं। ये जीर्णोद्धार, पुन:प्रतिष्ठा आदि जिन स्थानों पर हुए वो गोरी के पथानुसार ही किराड़ू, ओसियाँ, सांडेराव, कासिंद्रा, मरोल, सांचौर आदि हैं। इसके साथ खीचूंड (खीचन) से मई 1178 ईस्वी के गोवर्धन शिलालेख भी वही कथा कहते मिलते हैं। ये साक्ष्य सिद्ध करते हैं कि बुतशिकन गाजियों के लश्कर इन क्षेत्रों से तोड़फोड़ करते हुए 1178 ईस्वी में ही निकले थे[4]। ऐसा सबसे पहला शिलालेख मई 1178 ई. का शांतिनाथ मंदिर कासिंद्रा से मिलता है।

इससे भी पीछे चलें तो पृथ्वीराज का नागार्जुन से उत्तराधिकार युद्ध जो कि (पृथ्वीराजविजय अनुसार) गोरी के अभियान आरम्भ से ठीक पहले समाप्त हुआ, वो हमें 1177 ई. के अन्त या 1178 ई. के आरम्भ में रखना होगा।

अतएव इस उत्तराधिकार युद्ध से पहले यानी 1177 ई. के आरम्भ में पृथ्वीराज का राज्याभिषेक निश्चित होता है। मंत्री और राजमाता के संरक्षण में अवयस्क पृथ्वीराज के नाम के शिलालेख निकलना कोई विचित्र बात नहीं।

जब पृथ्वीराज का सिंहासन पर आना ही 1177 ई. पर निश्चित हो गया तो सोमेश्वर के आंवलदा और पृथ्वीराज के बड़ला शिलालेखों की तिथिवार सटीकता पर हमारी निर्भरता वैसे भी समाप्त हो जाती है।

जैसा कि पुरातत्वविद गोविन्द स्वामीराव गाई सिद्ध करते हैं[5], आँवलदा अभिलेख के दो भाग हैं। दोनों का लेखन पृथ्वीराज के शासनकाल में फरवरी 1188 ईस्वी में हुआ है। फरवरी 1188 ईस्वी की

सम्वत तिथि अभिलेख के पहले भाग में है। दूसरे भाग में सोमेश्वर चौहान और 11-12 साल पुरानी एक तिथि का उल्लेख है। इतने वर्षों के अन्तर के कारण तिथि के सटीक अंकन में भूल सम्भव है। शिलालेख क्षतिग्रस्त है सो अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती।

अब यहाँ पिछली सारी जानकारी जोड़कर एक बार संक्षेप में यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि धनुर्धनी पृथ्वीराज के राज्याभिषेक से लेकर गोरी के तोड़े मन्दिरों के जीर्णोद्धार तक का घटनाक्रम किस प्रकार है।

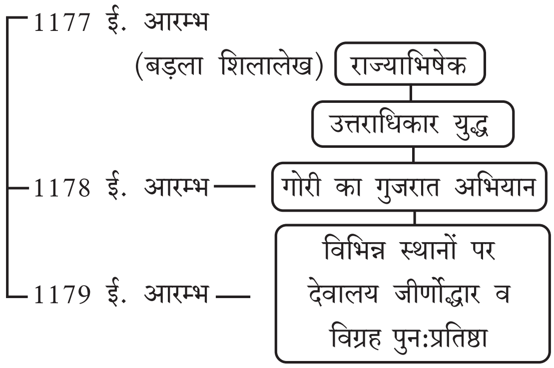

गोरी की ओर लौटते हैं। बुरी तरह पछाड़ खाये शहाबुद्दीन को उबरने में समय लगा और फिर कई वर्षों तक मुख्य भारत में घुसने का उसने प्रयास ही नहीं किया। वो अब हार से सीख लेकर अन्य क्षेत्रों में छोटे-छोटे कब्जे करने लगा।

1179-80 ई. में सुदूर उत्तर के खैबर दर्रे से आकर गोरी ने क्षीण हो चुके गजनवी शासक खुसरो मलिक से पेशावर छीन लिया। गोरी के गजनवियों पर दबदबे की बात करते हुए पृथ्वीराजविजय भी बताती है कि उसने गजनी के राजा को भूमिहीन और गौरवहीन बना दिया और अब गोरी के अपने नाम से सिक्के भी ढल रहे थे।

इसके बाद 1181-82 ई. में गोरी ने लाहौर की ओर दबाव बढ़ाया। इसका उत्प्रेरक जम्मू के राजा चक्रदेव का गोरी को आमंत्रण बताया जाता है। जम्मू का यह वयोवृद्ध राजा और गोरी आपस में मित्रवत थे[7]। हुआ यूँ कि उत्तरी पंजाब की खोखर जनजाति ने चक्रदेव को किसी कारण से कर देना बंद किया जिससे राजा और खोखरों के बीच टकराव हुआ। खोखरों की सहायता कर रहा था उनका नया मित्र, लाहौर में बैठा गजनवी खुसरो मालिक। खुसरो को सबक सिखाने के लिये चक्रदेव ने गोरी को बुला लिया। गोरी ने लाहौर को घेर तो लिया पर जीत नहीं सका। अन्त में खुसरो ने गोरी को यह विश्वास दिलाने के लिये कि आगे अपनी हद में रहेगा, अपना पुत्र और एक प्रसिद्ध हाथी मुइज़ुद्दीन के हवाले किया और जान छुड़ाई। लौटता हुआ गोरी लाहौर से उत्तर में सियालकोट रुका और वहाँ जर्जर पड़े एक किले की मरम्मत और तैनाती के लिये अपने अधिकारी हुसैन-इ-खरमील को छोड़ गया[8]। यह निर्णय चक्रदेव की ओर से भेजे प्रतिनिधि मण्डल से गोरी के मार्ग में मिलने के बाद हुआ (सम्भव है खोखरों को ध्यान में रखते हुए)[9]। यह दुर्ग चक्रदेव के राज्य की सीमा के आसपास ही था। इस विषय पर हिस्टरी ऑफ जम्मू और तबकात दोनों स्रोत एकमत हैं।

वर्ष 1182 -83 ई. में गोरी का ध्यान दक्षिण को गया। उसने दक्षिणी पंजाब यानी मुल्तान में स्थापित होकर सिंध विजय का अभियान आरम्भ किया। गोरी ने सूमरा समुदाय से एक घोर युद्ध के बाद देबल (वर्तमान कराची) जीत लिया[10]। सूमरा तब तक हिन्दू थे। अब पंजाब के गजनवियों को छोड़ गोरी की संपूर्ण पूर्वी सीमा हिन्दू राज्यों से मिल रही थी।

सिंध में गोरी का विस्तार एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है जो पृथ्वीराज और गोरी के पथ मिलाती है। अब तक के प्रमुख और परम्परागत कथानक पृथ्वीराज और गोरी

(शेष पृष्ठ 28 पर)

गतांक से आगे

मर्यादा के दृष्टिकोण से भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण

– व्याख्याकार–परमहंस स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी
संकलन–डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा

ज्ञानी उद्धव वृन्दावन पहुँचे। राधिका के संरक्षण में सभी गोपियाँ 'हे कृष्ण गोविन्द मोहन मुरारी' का संकीर्तन कर रही थी। उद्धव जी दिखाई पड़े। सबने उन्हें अभिवादन किया, पूछा–आप तो मथुरा से आए हैं, बताएँ हमारे कन्हैया कैसे हैं? उद्धव ने उन्हें समझाया,-क्या कन्हैया-कन्हैया की रट लगा रखी हो। तुम आत्मा हो, स्वरूप देखो। संसार नश्वर है, आत्मा शाश्वत है। ब्रह्म तुमसे भिन्न नहीं है। भेद–भक्ति छोड़ो। ईश्वर ध्यान करो। राधा ने कहा–

ऊधौ! मन न भये दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग,
कौ आराधै ईस।।

मन तो एक था, वह श्याम के साथ चला गया। अब आप द्वारा उपदिष्ट ईश्वर की (उपासना) आराधना किस मन से करें। मन दस–बीस तो होते नहीं। सत्संग आगे बढने पर उद्धव ने गोपियों को नमन किया, ध्यानस्थ हो गये तो वहाँ श्रीकृष्ण थे, राधा थी। भगवान का उद्घोष है–

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिना हृदये न च।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः।।

ज्ञानी उद्धव, भक्त उद्धव बनकर लौटे। वह भी उसी विधि से श्रीकृष्ण चिन्तन में अनुरक्त हो गये। गये थे गुरु बनने, शिष्य बनकर लौटे। अस्तु जो भक्त होता है, जिसकी वृत्ति 'र' की धारा में रमण करती है, भगवान सदा उसके साथ रहते हैं। नन्दा नाई का वेष बनाकर, उसका उद्धार कर दिया। चाण्डाल सूपा भगत को सर्वोपरि महात्मा घोषित कर दिया। सूत–पुत्र विदुर के घर साग–पत्ती खा लिया। अर्जुन को अहंकार हो गया तो एक तपस्वी से उसका परिमार्जन करा दिया। भगवान तो भाव के भूखे हैं, यही राधा–रमण का आशय है। 'भावे विद्यते देव:' भाव में क्षमता है कि अविदित परमात्मा भी विदित हो जाता है।

भावबस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
मानस 7/92ख

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं म जाना।
मानस 1/184/3

भाव महान् बलवान है, किन्तु प्रीति–संचार के माध्यम से –

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा।
किएं जोग तप ग्याम बिरागा।। मानस 7/61/1

अत: राधा, गोपियाँ और अर्जुन प्रतीक हैं।

पूतना वध :

गोकुल में श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। कंस की सैन्य टुकड़ी गोकुल में आ गई थी। उन्होंने पूछा–यह उत्सव कैसा? ग्वाल बालों ने बताया–नन्द बाबा के लल्ला की छठी का उत्सव मनाया जा रहा है। सैनिकों ने कहा–आज इस बालक का अन्तिम दिन है, छठी का दूध उसे याद रहेगा। उन्होंने हमला कर दिया। ग्वाल बालों ने पत्थर मारकर उन सैनिकों को भगा दिया। कंस ने सुना, उसने अधिक सैन्य बल भेजना चाहा किन्तु मंत्रियों ने परामर्श दिया कि इससे जनता में बगावत फैल सकती है। अत: कृष्ण की गोपनीय ढंग से हत्या के लिये पूतना नामक राक्षसी को भेजा गया।

हजारों शिशुओं की हत्यारी पूतना कृष्ण की हत्या करने नन्दराय के घर आई। कृष्ण की हत्या के बाद गाँव के सभी शिशुओं की हत्या करने आई थी। जनपद को पूतविहीन करना ही उसका कार्य था। 'यथा नाम तथा गुण'। उसने कृष्ण को गोद में उठा लिया और वह मर गई। लोगों का आक्षेप है-कृष्ण ने पूतना को मार डाला। एक माह से पहले बच्चों की मुट्ठी भी नहीं खुलती। खुल भी गई तो दो इंच के भीतर अंगुलियाँ, हथेली सब आ जायेगी। उस शिशु ने कौनसी छुरी भौंक दी या गला दबा दिया जो मार डाला। वस्तुतः कृष्ण को अपनी गोद में पाकर पूतना आह्लादित हो उठी कि जो कार्य कंस की सेना नहीं कर सकी, आज वह मैं करने जा रही हूँ। बहुत से बच्चों को विषयुक्त स्तन पान द्वारा उसने मारा था। उसे कृष्ण की मृत्यु में संदेह नहीं रहा। कंस ने वादा भी किया था कि सफल होने पर दक्षिण वाला साम्राज्य तुम्हारा होगा। अत्यधिक खुशी में प्रायः हृदयाघात हो जाया करता है। धमनियाँ फट गई होगी, बेचारी मर गई। किन्तु छिद्रान्वेषण करने वालों को संतोष कहाँ?

इतिहास इस तरह के कथानकों से भरे पड़े हैं। औरंगजेब की चालों में आकर जोधपुर नरेश ने अपने पुत्र को शेर से निहत्था लड़ा दिया। लड़के ने शेर को मार डाला। औरंगजेब ने एक विषसिक्त पोशाक उसे उपहार में पहनने को दी, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। कृष्ण के लिये उस पूतना ने तो कुछ अधिक ही काल कूट विष का लेपन कर लिया था क्योंकि कृष्ण ही तो उसके लक्ष्य थे। संभव है उसी से उसकी मृत्यु हो गई हो। व्यास सरोवर पर दुर्योधन की जाँघ टूट गई। किन्तु वह मरा नहीं था। उसने अश्वत्थामा से पाण्डवों का सिर काट लाने को कहा। अश्वत्थामा गया और रात में सोये हुए पाण्डव-पुत्रों का सिर उन्हें पांचों पाण्डव समझकर काट लाया, दुर्योधन को दे दिए। दुर्योधन ने कहा भीम का सिर मैं अपनी गदा से तोड़ूंगा। गदा से प्रहार करते ही वह सिर चकनाचूर हो गया। दुर्योधन ने कहा-यह सिर भीम का नहीं हो सकता। सैंकड़ों बार उसके सिर पर मेरी गदा का प्रहार हुआ है, उससे चिनगारी छिटकती थी। यह पाण्डवों के सिर नहीं हो सकते। चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश में उन सिरों को ध्यान से देखने पर दुर्योधन बहुत रोया। वह बोला-दुष्ट ब्राह्मण! तुमने तो मेरे वंश का मूलोच्छेद कर दिया। यह सिर तो पाण्डव पुत्रों के हैं। हत्यारे! दुष्ट! भाग मुँह काला कर। दुर्योधन हाय-हाय करता मर गया। अत्यन्त प्रशंसा और अत्यन्त शोक में हृदय की गति रुक जाया करती है। वह जाँघ टूटने से नहीं मारा किन्तु शोक में मर गया।

इसमें श्री कृष्ण का दोष ढूंढना अज्ञान अथवा आक्रोश मात्र है, आसुरी स्वभाव की देन है। पूतना प्रकरण एक धार्मिक आख्यान है जिसे हृदयंगम् करने के लिये सत्पुरुषों का सत्संग आवश्यक है। वास्तव में दैवी सम्पद् देव की है। श्वास वासुदेव है जिसमें परमात्मा का निवास है, जिसका विधिवत भजन करने से भगवान हृदय में जागृत हो जाते हैं। वह हृदय से रथी हो जाते हैं, यही कृष्ण का जन्म है। यह गोकुल अर्थात् इन्द्रिय संयम में पलने लगते हैं। कर्म रूपी कंस से संचालित प्रकृति रूपी पूतना विषय रूपी विष लेकर आती है। उसने जहाँ श्रीकृष्ण का स्पर्श किया, प्रकृति मर जाती है, भगवान के रूप में परिवर्तित हो जाती है। अघासुर, बकासुर सब शान्त होते चले जाते हैं। यह योग विधि है, साधन पद्धति है।

चीर हरण- श्री कृष्ण की चीर हरण लीला और रास लीला को अश्लील तथा मर्यादा विरुद्ध घोषित करने के प्रयास होती ही रहते है। यह भी वास्तविकता से मुख मोड़ने जैसा ही है। ग्रामीण परिवेश में पांच-सात साल तक के बच्चे नंगे ही रहते हैं। माताओं के मध्य उनकी या माताओं की क्रीड़ाओं को अस्वाभाविक

कहना न्यायोचित नहीं है और न यह अश्लीलता की परिधि में ही आता है। वस्तुत: इन प्रसंगों के आध्यात्मिक निहितार्थ हैं। योग रूपी यमुना में प्रवेश करने पर चित रूपी चीर का भगवान हरण कर लेते हैं। भगवत्कृपा से श्रद्धा-समर्पण से पूरित होने पर चीर साधक की रहनी-गहनी में परिलक्षित होती है। चीर लेकर वृक्ष पर चढना अचेत आत्माओं को जगाना था। उनकी श्रद्धा को विकसित करना था। अपनी भक्ति का संदेश देना मात्र था।

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा – मानस 2/92/2

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी

– गीता 2/69

जगत् रूपी रात्रि में जीव अचेत पड़े हैं। उन्हें जगत रूपी रात्रि से जगाना, भजन चिन्तन में प्रवृत करना भगवान की अहेतुकी करुणा मात्र है। गोपियों ने वृक्षारूढ कन्हैया से वस्त्र माँगे। भगवान ने कहा- आओ, पहचान कर अपने वस्त्र ने लो। गोपियों की समस्या थी कि निर्वस्त्र कैसे बाहर निकलें। श्रीकृष्ण ने पूछा-आप लोग गयी कैसे थी? उन्होंने कहा-तब यहाँ कोई नहीं था। श्रीकृष्ण ने कहा-था कैसे नहीं? अपने हृदय में देखो कौन है? वहाँ कृष्ण दिखाई पड़े। कहा- जल में देखो कौन है? वहाँ भी श्रीकृष्ण दिखाई पड़े। जल में, थल में, ऊपर, नीचे चतुर्दिक कृष्ण ही विराजमान थे। अब कृष्ण को हाथ जोड़कर बाहर आने में उन्हें क्या आपत्ति होती? इस लीला से भगवान ने अपने स्वरूप का परिचय दिया गोपियों की निष्ठा दृढ हो गई। उस दिन से गोपियाँ भक्तिमार्ग की पराकाष्ठा पर प्रतिष्ठित हो गई, फिर कभी पदच्युत नहीं हुई।

गोकुल में रहकर श्रीकृष्ण ने अनेक लीलाएँ की। उन सबका एक ही प्रयोजन था-अनन्यता के साथ एक परमात्मा में निष्ठा व समर्पण। गोवर्धन उठाना, कालिया का मान मर्दन, केशी इत्यादि निशाचरों का अंत, कंस के निमित्त यज्ञ कर रहे ब्राह्मणों का यज्ञ बन्द करवाना, उन्हें अपनी भक्ति में लगा लेना भक्ति का प्रशिक्षण मात्र था। कई अवसरों पर भक्ति की परीक्षाओं में रुक्मिणी, सत्यभामा इत्यादि की साधनाएँ पीछे रह गई, गोपियाँ आगे निकल गई। चीर हरण लीला द्वारा उन्होंने जगत रूपी रात्रि में अचेत पड़े जीवों को अपने स्वरूप का बोध कराया कि भगवान से हम-आप क्या छिपा सकते हैं? वह सर्वत्र आँख वाला है, सर्वत्र हाथ-पैर वाला है। इतना ही नहीं, वह बिना हाथ पैर के सर्वत्र सभी कुछ करता है, देखता है, सुनता है, सक्षम है। बाल्यकाल में भगवान ने जिन्हें प्रशिक्षण दिया, वे शिष्य सर्वोपरि निकले। उनमें से कभी कोई पतित नहीं हुआ।

●

सचमुच जो त्याग करता है, उसका कोई जवाब नहीं। जो सरल है, उसका कोई मुकाबला नहीं। जिसने पवित्रता को धारण कर लिया है उसने लोकसंग्रह के सभी गुण हासिल कर लिये हैं। जो कूटनीति से अपने आपको त्यागी सिद्ध करता है, वह भगवान को गाली देता है। सच्चे अर्थों में लोकसंग्रह लोक शिक्षण ही है और अपने आपको स्नातकोत्तर श्रेणी का शिक्षण जब तक नहीं होता तब तक अन्य लोगों का शिक्षण असंभव है।

– पू. तनसिंहजी

इन भावों के दरिया में तूफान है

– सूरतसिंह कालवा

तुम आओगी माँ! चाहे देर अबेर करो, आना तो तुमको पड़ेगा चाहे कितनी ही देर करो। फूलों में तुम हो मुस्काती, ज्योति में तुम जगमगाती ये इशारे आने के हैं, तुम आओगी माँ, तुम आओगी। मैं तुम्हें पुकार रहा हूँ पुकारना मेरा काम है। मैं तुम्हें पुकारे बिना रह भी नहीं सकता। जुग बीत्या तें सुध नहीं लीनी पत जासी तो थारी, मेरा क्या? हाँ, रखवाली नहीं कीन्हीं तो मनैं कुण कहसी रखवाळा? इसलिए हे जोतमयी माँ! तू एक जोत जगा दे तोड़ हिये रा ताळा।

मैं तो तुम्हें पुकार रहा हूँ और नित्य पुकारता ही रहूँगा, जब तक न आओगी मैं तुम्हें यूं ही पुकारता रहूँगा, क्योंकि खेती महारी ऊधड़ी थारी रखवाली रे, जगदम्बा माता मैं थारै भरोसै रो हाळी रे, काळां में करजे मती रीसणो। तुम रूठी रहोगी? कब तक? नहीं, तुम रूठ ही नहीं सकती। मेरे अरमानों की चिता जल रही है विकट कसौटी त्याग राग की तो समझा दो मुझको कि दिल के घाव किसे बतलाऊं? कौन सहलाए इनको? अपनी शमां पर मैं तो जला रहा हूँ। मेरी किस्मत को अंधियारे ने खूब छला, मेहनत से निष्ठा से मेरा दीप जला। अब मेरी निष्ठा की परीक्षा क्यों लेती हो माँ? तुम्हारे इशारे पे ही तो मैं चला था, चल रहा हूँ और चला जा रहा हूँ। अन्धेरी दिशाओं में घिरा था मैं तो उजालों में अकेली उजाला थी तुम। इसलिए तुम्हारे ही इशारों पर तुम्हारे ही भरोसे चला था मैं और चला जा रहा हूँ। चलते-चलते पग मेरे हारे अब तो पार करो। सबको दर्शन तुम देती हो, मेरी परीक्षा क्यों लेती हो? तेरी ममता छिप न सकेगी लाखों जतन करो। मैं तेरा हूँ क्या छोड़ोगी? शरण में हूँ क्या ठुकरा दोगी? भक्तों की कल्याणी माता मेरी खबर करो।

मोक्ष प्राप्ति की मेरी कोई माँग या इच्छा नहीं है, जो समय मिला है, बचा है उसका सदुपयोग कर लूं सभी सद्कार्यों में माध्यम बन जाऊँ, बना रहूँ यही कामना है। सद्विचार आते ही अच्छे संकल्प भी आने लगेंगे जिन्हें माँ! तम स्वयं पूरा करोगी, कल्याणकारी मांगलिक संकल्प माँ तुम्हीं तो मुझसे करवाती हो और उन्हें पूरे भी तुम स्वयं करती हो। फिर मेरी परीक्षा क्यों लेती हो?

गाढी म्हारी जीभ सुमरतां कान हुया बोळा थारै
दिन पलट्या जद मायड़ पलटी बेटां ने कुण बुचकारै?
माँ थारो तिरशूल चलै कद राकसड़ा कद अरड़ासी
थारे तो लाखों बेटा है म्हारी मायड़ इक रहसी
हूँ कपूत जायो हूँ थारै, थनै कुमाता कुण कहसी?
अब तो थारी पत जावै है बाघ चढ्यां तू कद आसी
माता अब तो सांझ पड़ी है, रूस्यो दिन कद उग आसी।

ऐसा हो ही नहीं सकता माँ! कि तुम न आओ, आना तो तुम्हें पड़ेगा, चाहे देर करो, अबेर करो, तुम आआगे माँ। तुम जरूर आओगी।

हाँ, आवै तो छेटो सो एक खांडो ल्याजे, एजी म्हारै बखतरियो लेती आए म्हारी मांय, थारै तो छोरू री जान चढ़ जावैली। सरणाई साधार कही जै तू, एजी थारै बचनां री प्रत पाळे। म्हारी मांय, म्हारो शीश नमन्ता थारी आँख लाजैली।

तुम आओ माँ! मेरी सुध लो माँ! तुम आओ माँ! और मेरी बुझती चिनगारी में कुछ अंगार भरो, तूफानों में डगमग करती नैया का आधार करो माँ! उपेक्षित मेरे इस जीवन में चाह भरो उद्धार करो माँ! मेरी खाली अंजली में सुन्दर से कुछ बलिदानों के फूल भरो माँ! जीवन की धारा अकुला गई और परम्पराएँ टूट गई हैं, किसे विवसना बना कौन दासी

अब रानी बन गई है। धरम गयो म्हारी धरती लेग्या चाकर आज धणी बणग्या एजी अब तो पत रजपूती री जावै म्हारी माँ! रमझौळा झमकाती तू कद आवैली? जनम दिया पाछी सुध नहीं पूछी, एजी हूँ तो रड़तां-रड़तां हार्‌यो म्हारी मांय, म्हारो लाड लडावण तू कद आवैली?

आना तो तुझे पड़ेगा चाहे देर अबेर करो किन्तु क्या यह सम्भव है कि तुम न आओ? सम्भव हो तो मत आओ माँ! पुकारना मेरा काम है, मैं तुम्हें पुकारे बिना रह नहीं सकता, तुम अपने मन की करती रहो, कब तक कर पाओगी अपने मन की? तुम अपने बस में हो भी? तुम आती हो कभी? नहीं, तुम नहीं आती खींच ली जाती हो? क्या तुम दया करके आती हो? यह कैसी दया है? रोते-रोते पलकें झरते-झरते जीवन जला जा रहा है पर तुम्हारी दया द्रवित नहीं होती, यह कैसा मातृत्व तेरा? फिर भी मैं हताश नहीं हूँ, मैं अपना कर्तव्य अपनी आवश्यकता समझता हूँ, मुझे अपनी शक्ति पर न सही अपनी उज्ज्वल लम्बी आहों पर भरोसा है, कोई मुझे रोक नहीं सकता। असफलताओं से मैं हारता नहीं, कभी भयभीत नहीं होता, असफलताओं से चूर्ण होता हो ऐसा तेरा बेटा मैं नहीं हूँ। विश्वासों का मैं धनी हूँ। मेरे नयनों से अश्रुधारा अविरल बहती रहेगी, निश्वासों की तीव्र निर्झरणी झूमती रहेगी और पगली वेदनाएँ भी, पर मैं कभी हारूँगा नहीं, तेरे चरणों की सौंगन्ध कभी हताश नहीं हो सकता मैं, अपने हृदय को, अपने हाथों से मसलते हुए बढता जा रहा हूँ मैं, बढता रहूँगा मैं। तुम आओगी माँ! तुम दौड़ती हुई आओगी। तुम जरूर आओगी तुम्हें आना पड़ेगा माँ! तुम्हें आना ही पड़ेगा।

यह मेरा अटल-अटूट अडिग दृढ विश्वास है या मेरी जिद या अक्खड़पन, जो भी है, सहारा तो तेरा ही है, प्रेरणा तो तेरी ही है। मेरी तो आकाँक्षाएँ हैं अरमान हैं जो उठते प्राणों में, उलझी हुई हैं गुत्थियाँ जीवन के तारों में। जीवन में उलझी इन गुत्थियों को सुलझाना है तो मुसीबत में से टकराना है। अब तो मुसीबतों से टकराने की मेरे मन में आती है, क्योंकि बीता युग कोस रहा है कि यह भी कोई जीना है? धिक्कार है ऐसे जीने को जागो-जागो। इसीलिए अब ममता का पाश तोड़कर जीवन का मोह छोड़कर निर्बल हाथ पसारे पुकार रहा हूँ तुझे, कि अब जागना है। क्योंकि जिया जूण तो जागी रे बाला नीसरग्यो क्यूं राम? उठो मन जाग्यां सरसी काम। रात जात सब जाती दीसै, बांधूड़ा कण-कण रा दीसै आँसूड़ा आंख्यां में अटक्या अब हिवड़ा पग थाम।

अब पग थमे तो कैसे थमे? इसीलिए तो अनुनय है मेरा, प्रार्थना है मेरी और दुराग्रह भी है मेरा कि तुम आओ, मेरा हाथ थामो तो पग भी थम जाएँगे। तुम्हारी कृपा हुई, हाथ थामा तुमने और पग थम गए मेरे तब, ज्ञान का कर दूँ नव आलोक, शक्ति से नदियों को दूं रोक, करूँ मैं पर्वत के दो टूक क्षात्र का मंत्र सुनाऊँ फूँक। हाथ थाम लिया तुमने, बाँह ले ली जो तुमने तो फिर क्या चांदनी और क्या अंधेरा? कौम के भाग्य में निश्चित आएगा सवेरा और भटके हुए जीवन को मिलेगा नवाधार। बाधाएँ तो आयेंगी हमको अब तक न आई है किसको? चलना है मंजिल पे जिनको, लगेंगे ही काँटे उन्हीं को। किन्तु माँ! घाव पड़े तो मरहम लगाना, भटकूं कभी तो रस्ते लगाना मौसम को मेरा साथी बनाना। फिर देखना-भुजां रै भरोसै हिमाळा उठाल्यूं, कहो तो पळों में समन्दाँ ने पील्यूं।

एक पुजारी की यह प्रार्थना है। पूज्य तनसिंहजी के पुजारी रूप में इन भावों में प्रार्थना है, अनुनय विनय है-विनती है। पूज्य को बुलावा है-आओ! मेरी सुध लो। इन भावों में निमंत्रण है, समर्पण भी है, विश्वास है तो सन्देह भी है और साथ में उपालम्भ भी है तो चेतावनी भी है। माँ! तुम कैसे नहीं आओगी? तुम आती ही कब हो खींच ली जाती हो। आना तो

तुमको पड़ेगा, तुम आओगी माँ! तुम्हारा सहारा पाकर मेरे लिये वह सब सम्भव होगा-जो मेरे अरमान हैं पूरे होंगे, ध्येय स्पष्ट है तुम्हारे इशारे से मार्ग सुलभ हो जाएगा। सुनलो! रीति पुरानी है कुल की बताती रुकना न झुकना बढना सिखाती। चला हूँ तभी तो मंदिर जगाता पसीना बहाता, राहें बनाता पुजारी से भी मेरी पूजा बड़ी है। माँ! तुम्हारे इशारे पे जो भी चले, त्वराएँ उठी हैं जमाने हिले तुम्हारे नशे को पीऊँगा नहीं तो जमाने में मैं किसकी इबादत बनूं?

तुम अन्तर्यामी हो माँ! इसलिए अन्तर्यामी के हम हो गए जाने या अनजाने मानसपट पर चित्र बने हैं, रंगभरे मनमाने। ये सब तुम्हारे भरोसे माँ! जो अब तक सोते हैं उनको भी उठाना, तकदीर पे पुरुषार्थ का डंका बजाना। इन्सान झुके भगवान को भी झुकना ही पड़ेगा। हो जग में ज्योति जगानी जीवन में साध बड़ी हो जुगनू की चमक से क्या हो अन्तर में आग भरी हो। जब तक चेतना बहिर्मुखी रहेगी हम किसी को नहीं जान पाएँगे, न ही पहचान पाएँगे। स्वयं अपने आप को भी नहीं पहचान पाएँगे। जब चेतना अन्तर्मुखी बनती है तभी सबसे पहले अपने आपको जानने की बात बनती है, अपने आपको जानेंगे तभी दूसरों को भी जानेंगे, स्वयं को जाने बिना हमारे मूल्यांकन की दृष्टि यथार्थ नहीं होती। अपने आपको जानने के लिये अन्तर्मुखी होना आवश्यक है और इसके लिये मन पर अनुशासन आवश्यक है, मन पर अनुशासन तभी फलित होता है जब अपनी इच्छा पर अनुशासन साध लिया जाए। इच्छा बीज है। सृष्टि का नियम है-''परिवर्तन'', यह शाश्वत नियम है। यदि आदतें न बदलें तो पुरुषार्थ का कोई अर्थ नहीं, अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं।

हमारे सामने एक बड़ा आयाम है बुद्धि का, बुद्धि को अतिरिक्त मूल्य मिला तो अनेक समस्याओं का जन्म हुआ। हम बुद्धि के स्तर पर बदलना चाहते हैं, हम अपनी स्मृति का विकास भी बुद्धि के स्तर पर चाहते हैं और एकाग्रता का विकास भी बुद्धि के स्तर पर ही चाहते हैं। यह सम्भव नहीं, क्योंकि बुद्धि का काम है विश्लेषण करना, निर्णय करना, तर्क करना और संदेह करना। बुद्धि का व्यायाम जहाँ भी होगा वहाँ सन्देह होगा-ऐसा क्यों हो रहा है? ऐसा क्यों करना चाहिए? सन्देह के बाद अनेक तर्क पैदा होते हैं।आज समाज सुधार की बहुत बातें होती हैं, अनुशासन और नियंत्रण के द्वारा समाज सुधार के प्रयोग होते हैं, हो रहे हैं किन्तु कठोर नियंत्रण के बाद भी आज आदमी वहाँ का वहीं है-लोभ लालच आज भी है, परिवर्तन, बदलाव कहीं होता दिखाई नहीं दे रहा। परिवर्तन का, बदलाव का, हृदय परिवर्तन का यदि कोई सशक्त माध्यम है तो वह है ''आध्यात्म''। रूपान्तरण की अनुभूति जब व्यक्ति को स्वयं को हो जाती है तब वह पूरे परिवार को और समाज को बदला हुआ देखना चाहेगा। व्यक्ति सुधरे यह बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिस दिन व्यक्ति सुधार की प्रक्रिया गतिशील होगी उसी दिन से समाज सुधार की प्रक्रिया बहुत स्पष्ट हो जाएगी। हृदय परिवर्तन के बिना धर्म नहीं हो सकता, हृदय परिवर्तन के बिना समाज नहीं सुधर सकता, ये बातें जब स्पष्ट होंगी तभी आध्यात्म की ज्योति प्रज्वलित होगी और तभी व्यक्ति सुखी बनगा, समाज सुखी बनेगा। समाज सुखी बनेगा तो राष्ट्र स्वस्थ, समृद्ध और सुखी बनेगा। इच्छा बीज है और आध्यात्म माध्यम है।

आध्यात्मिक चेतना का आरोहण, विकास केवल मनुष्य जीवन में ही सम्भव है। इसीलिए प्रार्थना के स्वर में कहा जाता है कि मनुष्य बनें और आध्यात्मिक उत्कर्ष को उपलब्ध हों। नियंत्रण जरूरी है, आज समाज में सर्वत्र एक भय व्याप्त है और यह भय ही है जो नियंत्रण को जटिल से जटिलतर बनाए जा रहा है। इसका एक ही समाधान है-''आत्मानुशासन'' का विकास। आत्मानुशासन के

आधार हैं-शरीर का अनुशासन, श्वास का अनुशासन, प्राण का अनुशासन, वाणी का अनुशासन और मन का अनुशासन। ये पाँच अनुशासन मिलकर बनाते हैं- ''आत्मानुशासन''। इन पाँच अनुशासनों के लिये चाहिए-**संयम**। इन सबका घटक है-**ध्यान**। इन सबके लिये आवश्यक है-**साधना**-सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का **अभ्यास** और मार्ग है-यम, नियम, आसन, समाधि। आध्यात्मिक मार्ग पर बढने का यही विधान है।

यह मार्ग पू. तनसिंहजी का अनुभूत मार्ग था और इसी से वे अपने ईष्ट माँ भगवती को रिझाने में उम्र भर लगे रहे उन्हें अपने ईष्ट भक्तिभाव पर पूर्ण विश्वास था तभी तो वे अधिकार पूर्वक कहते हैं कि-तुम आओगी माँ! तुम्हें आना पड़ेगा, आना ही पड़ेगा, नहीं कैसे आओगी मैं तुम्हें खीच लाऊँगा। इसी अटल, अटूट, अडिग अपने विश्वास के बल पर ही तो उन्होंने कहा- कभी आएगा निश्चित सवेरा, धीरज मेरा है, केवल सहारा, कभी पुष्पों से थाली भरेगी, दुनिया आयेगी अर्चन करेगी-दे दूँ उसको बाँह जिसके हाथ जगत की। माँ भगवती को अपनी बाँह थमा कर ही तो वे बोले- सफल बनूं या नहीं बनूं मैं फिर भी बहता जाता हूँ अपने तप की ले मशाल मैं ज्योति जगाता जाता हूँ हारे अर्जुन को कर्मयोग का पाठ पढाने आया हूँ और सचमुच आयुपर्यन्त वे हारे हुए अर्जुन-हमारे सुप्त समाज को कर्मयोग का पाठ पढाते रहे। आध्यात्म योग की पहली सीढी तो कर्मयोग ही तो है।

इस अन्तर की यह आवाज सुनो
कुछ करके मरो या मरके करो।
इस उजड़ी डगरिया पर बढते चलो
चाहे हंसके चलो चाहे रोके चलो।।
इन भावों के दरिया में तूफान हैं
हम होनी की महफिल में महमान हैं।
उस मंजिल से पहले न सुस्तायेंगे
फिर धीरे चलो चाहे जल्दी चलो।।
ये अनमोल घड़ी बरबाद न कर
जब मिल ही गए तो फरियाद न कर।
इन प्यालों को आखिर पीना ही है
फिर जहर के हों या अमृत के हों।।

तब पूं. तनसिंहजी ने कहा-

जैसे भी करो, करना तो है। साथ ही उन्होंने अपने अनुचरों, अपने सहयोगियों को सावधान भी किया कि ध्यान रखना और याद रखना-

''साधारणताएँ ही मेरी सम्पत्ति हैं। मेरी समस्त असाधारणताएँ सामाजिक न्यास है, जिसका हिताधिकारी समाज का प्रत्येक व्यक्ति है। इसीलिए मेरी विशिष्टताओं के फल को अकेला मैं ही कैसे खा सकता हूँ? जब तक मेरी असाधारणताएँ सामान्यजन की साधारणतायें नहीं बन जातीं तब तक मुझे हठपूर्वक, उन व्यक्तिगत भोगों और कामनाओं से बचना है, जो मेरे प्रत्येक साथी को उपलब्ध नहीं हैं, फिर वे कामनाएँ चाहे मुक्ति की ही क्यों न हो। आज मुझे भोग और त्याग का नैतिक दर्शन प्राप्त हो उठा।''

उन्होंने ध्यान दिलाया कि-

''सच्चा साधक भी अधिकारों की कामना नहीं करता, क्योंकि वह केवल कर्तव्यों को ही अधिकार मानता है। उसकी प्रतिभा का लक्ष्य कर्तव्य पालन को सुगम बनाना है न कि अपने भोगों के लिये साधन जुटाना।''

इसलिए साधकों! सावधान! यदि सुविधाएँ भोगने लगे तो तनसिंहजी के लक्ष्य से भटके।

●

माता एक भाई पैदा करती है, वाणी दूसरा उत्पन्न करती है।
वाणी से उत्पन्न भाई सहोदर से भी उत्तम और हितैषी होता है। – **भर्तृहरि**

गतांक से आगे

शिक्षा का महत्त्व

– स्वामी धर्मबन्धु

अनुभवी शिक्षा :– अपने समय के इस पृथ्वी के सर्वश्रेष्ठ शिक्षक आचार्य चाणक्य जी ने चन्द्रगुप्त का मार्गदर्शन करते हुए यह उपदेश दिया था कि जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में गलती नहीं की, उसने भला अपने जीवन से क्या सीखा? अर्थात् मनुष्य अपनी गलतियों पर चिन्तन करने से बहुत कुछ सीख कर अनुभव प्राप्त कर सकता है। उदाहरण के तौर पर महात्मा गाँधी जी व्यक्तिगत रूप से कोई विशेष प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं थे। वह पढाई में अत्यधिक कमजोर थे। बड़ी मुश्किल से गणित और विज्ञान में पास होते थे। अपनी लिखी हुई लिपि को भी कभी-कभी पढ़ नहीं सकते थे। आत्मबल के इतने कमजोर थे कि बचपन में शौचालय जाने में भी भूत-प्रेतआदि से भयभीत होते थे। उनका जीवन अनेक प्रकार के व्यसन एवं गलत आचरणों से ग्रस्त हो चुका था। अर्थात् गाँधी जी शराब, सिगरेट एवं माँस आदि के भी शौकीन हो चुके थे। जो महात्मा गाँधी जी परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण न होने वाले थे, उनके शिष्य डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (भारत के प्रथम राष्ट्रपति) जो कि सदैव परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण होने वाले थे वो डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी महात्मा गाँधी जी के प्रबल अनुयायी कैसे बने? जो गाँधीजी गणित और विज्ञान में अत्यधिक कमजोर थे, परन्तु उनके सम्मान में गणित और विज्ञान के प्रतिभासम्पन्न वैज्ञानिक अल्बर्ट आईन्स्टीन ने 30 जनवरी, 1948 को उनकी निर्मम हत्या के बाद अनोखी श्रद्धांजलि दी। उन्होंने कहा था कि आने वाली पीढ़ियाँ इस बात पर विश्वास नहीं करेगी कि कभी इस धरती पर इस प्रकार का हड्डी और माँस का व्यक्ति चला करता था। इसी प्रकार जो महात्मा गाँधी जी अपनी लिखी हुई लिपि को भी यदा-कदा पढ़ नहीं सकते थे। जबकि काफी सुन्दर लिपि लिखने वाले और महान् देशभक्त तथा प्रतिभासम्पन्न नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने ही महात्मा गाँधी जी को ई.सं. 1944 में सिंगापुर रेडियो के माध्यम से सर्वप्रथम राष्ट्रपिता कहकर संबोधित किया था। नेताजी इतने प्रतिभाशाली थे कि उन्होंने आईसीएस की परीक्षा को प्रथम प्रयास में ही उत्तीर्ण किया। भूत-प्रेत से इतने भयभीत होने वाले महात्मा गाँधी ने जब द्वितीय विश्व युद्ध के विजेता इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल से मुलाकात के लिये समय माँगा तो चर्चिल ने यह कहते हुए मिलने से इन्कार कर दिया था कि यह लंगोटीबंद फकीर कहीं हमारे विचारों को तो परिवर्तित नहीं कर देगा। प्रश्न यह उठता है कि जिन विंस्टन चर्चिल ने जापान को तबाह कर दिया तथा जर्मनी के टुकड़े किये वो महात्मा गाँधी से योग्य, कर्मठ, सक्षम एवं कुशल थे। फिर भी गाँधीजी सबके गुरु एवं मार्गदर्शक कैसे बने? अर्थात् जो गाँधी जी बचपन में इतने असमर्थ थे, वे इतने सामर्थ्यशाली कैसे बने? इस प्रश्न का उत्तर गाँधी जी के अनुयायी एवं गाँधी विचारधारा के प्रगाढ़ अध्येता नारायण भाई देसाई ने इस प्रकार दिया। उन्होंने कहा कि गाँधीजी के जीवन में एक प्रमुख विशेषता यह थी कि गाँधी जी जो गलती एक बार करते थे वही गलती दूसरी बार नहीं करते थे। अर्थात् गाँधी जी की महानता का प्रमुख कारण गलती को सुधारने की क्षमता थी। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य स्कूली शिक्षा प्राप्त न करने पर भी अपने जीवन के अनुभवों के द्वारा बहुत कुछ योगदान समाज, राष्ट्र व मानवता को प्रदान कर सकता है। जैसे भाखड़ा नांगल बांध बनाने का नेतृत्व करने वाले एम.एच. स्लोकम ने इंजीनियरिंग की पढ़ाई नहीं की थी। इसी प्रकार नोबल प्राईज जीती हुई **गीतांजलि** पुस्तक के लेखक श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्कूल की शिक्षा प्राप्त

नहीं की थी। अन्य उदाहरण स्टीव जॉब्स, धीरूभाई अंबानी आदि के हैं। जिन्होंने न्यून शिक्षा प्राप्त करने पर भी अपने-अपने क्षेत्र में अद्भुत सफलता प्राप्त की थी। इसी प्रकार कालिदास जी, कबीर जी, विलियम शेक्सपियर और के. कामराज इत्यादि जैसे लोगों ने अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर सर्वोत्तम ज्ञान से परिपूर्ण न होने पर भी समाज, राष्ट्र एवं विश्व का उत्कृष्ट मार्गदर्शन किया। अत: मनुष्य के जीवन में शिक्षा के साथ अनुभव का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

प्रकृति से शिक्षा :- मनुष्य अपने जीवन को प्रकृति के सान्निध्य से जोड़कर एवं प्राकृतिक नियमों को विधिवत रूप से जानकर ज्ञान और विज्ञान का विकास करता है। इसी परम्परा के द्वारा प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनि प्रकृति की गोद में बैठकर प्राकृतिक नियमों के अध्ययन के द्वारा तत्वों का चिन्तन किया करते थे। इस चिंतन के द्वारा मानव जीवन के मुख्यतम गुणों एवं शक्तियों के विकास तथा जीवन की महत्त्वपूर्ण समस्याओं का अन्वेषण करते थे। आचार्य मदन और आचार्य जीवक ने वनस्पति शास्त्र का अद्भुत अध्ययन भी प्रकृति के सन्निकट ही किया था। सर आईजक न्यूटन ने भी गुरुत्वाकर्षण की खोज प्रकृति की प्रयोगशाला में ही की थी। इसी प्रकार अल्बर्ट आइन्स्टीन, आर्कमिडिज, सत्येन्द्रनाथ बोस, पीटर वेयर हीग्स आदि वैज्ञानिकों ने प्रकृति की पाठशाला से बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण की थी। इन्हीं पांच प्रकार के स्रोतों पर आधारित शिक्षा के द्वारा पूर्ण रूप से ज्ञान को अर्जित किया जाता है। ज्ञान सृजन के पश्चात ज्ञान का संवर्द्धन है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्य को अपने आंतरिक और प्राकृतिक ज्ञान को विकसित करना अत्यधिक आवश्यक है। ज्ञान का संवर्द्धन संयम, स्मृति एवं कर्तव्य परायणता से होता है। ज्ञान के संवर्द्धन में स्मृति का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार क्रोध, चिन्ता एवं नकारात्मक विचार से मनुष्य डिप्रेशन में चला जाता है, जिससे स्मृति एवं सोच-समझ प्राय: नष्ट हो जाती है। इसी विचार को लगभग 5 हजार वर्ष पहले योगेश्वर श्रीकृष्ण जी ने श्रीमद् भगवद्गीता के माध्यम से प्रतिपादित किया था। गीता के अध्याय 2 श्लोक 62, 63 में उपदेश दिया था कि विषयों का चिन्तन करने से संगति की प्राप्ति होती है, संगति से कामना की उत्पत्ति होती है। कामना की पूर्ति न होने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से कार्य की सिद्धि न होने पर मोह की उत्पत्ति होती है। मोह से स्मृति नष्ट हो जाती है। स्मृति नष्ट होने से बुद्धि का विनाश होता है। और बुद्धि का विनाश होने से मनुष्य का पतन निश्चित है। अत: मनुष्य को अपने जीवन को सार्थक एवं सामर्थ्यशील बनाने के लिये ज्ञान का संवर्द्धन करना अत्यन्त आवश्यक है। तभी तो महात्मा विदुर जी ने कहा था कि **विद्या योगेन रक्ष्यते** अर्थात् संयम के द्वारा विद्या की रक्षा करें। ज्ञान के सृजन एवं संवर्द्धन के पश्चात ज्ञान का वितरण करना अत्यन्त आवश्यक है। इस संदर्भ में यह कहना उचित होगा कि मनुष्य को हमेशा एहसास होना चाहिए कि धन संपदा का वितरण करने से कदाचित धन संपदा की कमी हो सकती है। परन्तु ज्ञान का वितरण करने से ज्ञान सदैव संवर्द्धित होता है। अर्थात् अध्ययन, मनन, चिन्तन और उपयोग के द्वारा विद्या की यथार्थ उपयोगिता होती है एवं ज्ञान की वृद्धि भी सुनिश्चित है।

कर्तव्यशीलता के लिये विद्या का अध्ययन करना चाहिए।

मनुष्य को कर्तव्यशील बनने के लिये एक जागरूक नागरिक बनने का प्रयत्न करना चाहिए। एक जिम्मेदार नागरिक का प्रगति एवं योजना में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। प्रत्येक नागरिक को सदैव यह एहसास होना चाहिए कि जब हम किसी संस्थान या कार्यालय में कार्य करें तो हम उस संस्थान को अपना समझकर काम करें। जब मनुष्य नागरिकत्व भाव से कर्तव्यशील होता है तो उसके मन एवं मस्तिष्क में सहभागिता, स्वामित्व

और सहभाजन की भावना उत्पन्न होती है। इसी सहृदयशील भावना से युक्त नागरिक अपने राष्ट्र, उद्योग, समाज आदि की उन्नति अवश्य करता है। प्रत्येक क्रियाशील नागरिक को हमेशा चिंतन एवं मनन करना चाहिए कि हमारे उत्तरदायित्व विहीन होने पर राष्ट्र, उद्योग, संस्थान एवं समाज का क्षरण निश्चित है। इसीलिए प्रत्येक नागरिक को कर्तव्यशील बनकर कुशलतायुक्त पुरुषार्थ करने का प्रयास करना चाहिए। इसी विचार को भगवान श्रीकृष्ण जी गीता में **योग: कर्मसु कौशलम्** (2.50) कहते हैं। इसीलिए नागरिक को हमेशा महसूस करना चाहिए कि यदि हम एक दिन भी जिम्मेदारीपूर्वक काम नहीं करेंगे तो हमारे कार्य के द्वारा होने वाला उत्पादन कम हो जाएगा। जितना हमारे देश का उत्पादन कम होगा उतना हमारे देश का निर्यात कम होगा। जितना निर्यात कम होगा उतना हमारे देश की आर्थिक प्रगति कम होगी। देश की प्रगति को रोकना राष्ट्रद्रोह होता है। अत: प्रत्येक मनुष्य को पुरुषार्थी एवं प्रयत्नशील होना चाहिए।

साथ मिलकर रहें एवं एक दूसरे का सम्मान करना सीखें

विश्व में किसी राष्ट्र की सुरक्षा अन्दरूनी सन्तुलन एवं आर्थिक प्रगति के बिना असम्भव है। आन्तरिक संतुलन एवं आर्थिक प्रगति के लिये देश के प्रत्येक नागरिकों के मन में साथ मिलकर रहने और एक दूसरे का सम्मान करने का भाव होना नितान्त आवश्यक है। अन्दरूनी संतुलन के बिना राष्ट्र की सुरक्षा असम्भव है। यह प्रश्न विचारणीय है कि 16 दिसम्बर, 1971 को पाकिस्तान का विभाजन क्यों हुआ। विभाजन इस तथ्य के बावजूद हुआ कि पाकिस्तान के दोनों हिस्सों यानी पंजाब और बंगाल में अधिकतर एक ही मत यानी इस्लाम के मानने वाले लोग थे। परन्तु यहाँ सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ व्यापक रूप से विद्यमान थी, इन्हीं कारणों से पाकिस्तान सुरक्षित नहीं रह सका। जबकि भारत देश में 1965 और 1999 में दो बार पाकिस्तान ने घुसपैठ करने का असफल प्रयास किया। दोनों बार हमारा गुप्तचर विभाग घुसपैठियों की जानकारी देने में असफल रहा। दोनों ही बार सीमावर्ती नागरिकों ने ही हमारी सरकार को घुसपैठियों के विषय में जानकारी दी और हमारी सरकार और सेना उन घुसपैठियों को निकालने में कामयाब रही। इसी प्रकार हम लोग नागा, मिजो, त्रिपुरा,असम, नक्सलवादी विद्रोहियों को अन्दरूनी संतुलन एवं आर्थिक प्रगति के द्वारा ही नियंत्रित कर सकते हैं। जब देश के नागरिक आपस में लड़ते हैं तो देश की सीमाएँ कमजोर होती हैं। परन्तु जब देश के नागरिक आपस में मिलकर रहते हैं तो देश की सीमाएँ सुरक्षित एवं मजबूत रहती हैं। आपसी मेल-जोल एवं परस्पर सहयोग के बिना आर्थिक प्रगति को भी सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है। संसार में वही देश प्रगतिशील एवं सक्षम होता है जहाँ के नागरिक आपस में मिलकर रहना जानते हैं। अमेरिका के सुप्रसिद्ध वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर को 11 सितम्बर, 2001 को आतंकवादियों द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था। उन दोनों टावरों में विश्व के 60 देशों के नागरिक कार्य करते थे। सभी की भाषा, संस्कृति, रुचि, धारणा, चिन्तन एवं नागरिकता अलग-अलग थी। परन्तु वे सभी एक साथ मिलकर काम करते थे, और एक साथ मिलकर काम तभी कर सकते हैं जब एक दूसरे के प्रति उनके दिलों में सम्मान की भावना हो। सन् 1986 में इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री मार्ग्रेट थ्रेचर और अमेरिका के राष्ट्रपति रोनाल्ड रेगन ने संयुक्त वक्तव्य दिया कि हम विश्व को वैश्विक गाँव के रूप में परिवर्तित करेंगे। आधुनिक तकनीक के द्वारा विश्व के प्रत्येक नागरिकों के साथ हमारा जुड़ाव हुआ परन्तु दुर्भाग्यवश परिवार से बिखराव हुआ है। जब तक हम परिवार के सदस्यों को एक नहीं कर सकते तब तक संसार के एकीकरण की सार्थकता उचित नहीं होगी। जब तक विश्व के मनुष्यों के हृदय में साथ मिलकर रहने की, साथ मिलकर कार्य करने की तथा

साथ मिलकर प्रगति करने की भावना जागृत नहीं होगी तब तक **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की योजना फलीभूत नहीं होगी। इस प्रगतिशील संसार में प्रतिस्पर्धा के लिये प्रत्येक मनुष्य को चुस्त, दुरुस्त और प्रतिस्पर्द्धात्मक होकर क्रियाशीलता के साथ परस्पर प्रेम और सौहार्द का परिचय देना चाहिए।

जीवन उद्देश्य के प्रति सतत जागरूकता

विद्यार्थी को हमेशा यह चिन्तन एवं परिशीलन करना चाहिये कि हमारे जीवन का जो उद्देश्य है उसमें हमें अभी तक कितनी सफलता मिली अर्थात् विद्यार्थी के हृदय में जागरूकता इस तात्पर्य की रहनी चाहिए कि हमारे जीवन में आने वाला प्रत्येक दिन हमारी आयु को समाप्त कर रहा है। अत: हमें समय को व्यर्थ बर्बाद किये बिना अपने जीवन को राष्ट्र एवं समाज की सर्वोन्नति के लिये सदैव अग्रसर रखना चाहिए।

पृष्ठ 5 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

करूँगा क्योंकि आपने भगवान से इसे माँगा है। तब लस्टम-पस्टम गति से नहीं, त्वरित गति से ही करना होगा। श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय:। तत्परता आवश्यक है। यह कहा और यह खड़ा हुआ और यह कहना शुरू कर दिया। जो करे वह बुद्धि से स्वीकृत हो, मन से स्वीकृत हो, हमारे चित्त से स्वीकृति हो, हमारा अहंकार कहीं इसमें आडे नहीं आ रहा हो तभी हम कर सकेंगे। भगवान की चाह भी यही है और हम भी भगवान से यही माँगते हैं। श्री क्षत्रिय युवक संघ में आकर भगवान और हमारी चाह का मेल हो जाता है। कैसा अनुपम संगम है यह। इसकी अनुभूति करें तो और अधिक आनन्द आएगा। हमारे लोगों ने अनुभव किया था। मैं समझता हूँ हममें से भी कुछ लोगों ने इस बात को अनुभव किया है, इसीलिए उनके जीवन में निखार आया है, उनके जीवन में प्रकाश है, उनके जीवन में ज्ञान है, अज्ञान से ढका हुआ नहीं है लेकिन ज्ञान का कोई अहंकार भी नहीं है। जो क्षत्रिय युवक संघ में ऐसे लोग हैं, हम भी वैसे बनें, यह हमारी इच्छा है। क्षत्रिय युवक संघ के द्वारा जो उपदेश दिए जाते हैं वो हमारे जीवन में उतरें। परमपिता परमेश्वरसे हम प्रार्थना करते हैं कि वह सदैव हमारे साथ रहे, सदैव हमको देखता रहे, हमको सन्मार्ग पर ले चलता रहे, आज के मंगल प्रभात में श्री क्षत्रिय युवक संघ की ओर से यही मंगल संदेश है।

पृष्ठ 7 का शेष

पूज्य श्री तनसिंहजी..

तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। पतन के गड्ढे आये, फिसलन व खड्डे आये पर केवल तुमने और तुमने ही मुझे हर फिसलन से बचाने में योग दिया तब मैं ऐसा कृतघ्न क्यों हो सकूंगा कि तुम्हें छोड़कर किसी नये हित चिन्तक की तलाश में मारा मारा फिरूँ। तीन बार तुमने मुझे ऐसे भूकम्प के झटके दिये कि मैं तिलमिला गया। मेरा पौधा बदले की भावना और अहंभाव की धूप में सूखने लगा, पर ज्यों ही मैंने अपने ही पहलू के चरणों में सिर नवाया, जलजला खत्म हो गया, कारवां फिर बन गया और मुझे याद है मैंने हर बार ही यह कहा- कौम के कुशल कारीगरों की जय हो।

''वर्तमान के सभी अस्त-व्यस्त स्थल, सभी विरोधाभास, मैं केवल तेरे लिए ही सह रहा हूँ क्योंकि तू ही मेरी संजीवनी का शाश्वत स्रोत है। एक क्षण भी जो मेरे साथ रहा उस क्षण की कृतज्ञता के कारण मैं युग-युग के वियोग की कृतघ्नता सह रहा हूँ और मैं देख रहा हूँ कि मेरी इस सहनशक्ति के गुरुत्वाकर्षण से ही हमारे कौटुम्बीय सम्बन्ध अक्षुण्ण बने हुए हैं।''

(क्रमश:)

गतांक से आगे

महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा

(द्वितीय अध्याय)

– भँवरसिंह मांडासी

राव गोपालसिंह फरार :

विश्वस्थ सूत्र से राव गोपालसिंह को ज्ञात हो चुका था कि अंग्रेज अधिकारी उनके पास रखने के हथियार भी छीनना चाहते हैं। इस हद तक अपमानित होने को वे तैयार नहीं थे। उनका कहना था–''सरकार ने अपने वचन और आश्वासन भंग करके मेरी जागीर पर अधिकार कर लिया, मेरे पूर्व पुरुषों द्वारा संचित सम्पत्ति और शस्त्रास्त्र जब्त कर लिए, मेरे ग्रामवासियों पर तीन दिन तक अमानवीय अत्याचार किए गए और अब यह सरकार मेरे पास से शस्त्र भी छीन लेना चाहती है। मैं राजपूत हूँ, अपने शस्त्रों को प्राणों से अधिक प्रिय मानता हूँ। जीवित रहते मैं शस्त्र नहीं सौंप सकता। मेरी इस कार्यवाही को सरकार राजद्रोह माने तो भले ही मानती रहे।'' स्वाभिमानी और आन-बान के धनी राव गोपालसिंह ने क्षत्रिय गौरव की रक्षार्थ अन्तत: टॉडगढ़ की नजरबन्दी तोड़कर फरार रहकर जीवन बिताने का पूर्ण निश्चय कर लिया। 8 और 9 जुलाई, 1915 को अपने निजी सेवकों और परगह के राजपूतों को उनके घर जाने की छुट्टी दे दी। अपने विश्वस्त साथी और स्वभाव से अक्खड़ मेड़तिया सवाईसिंह को कुछ द्रव्य देकर 9 तारीख को ही किसी अज्ञात स्थान के लिये यह निर्देश देकर रवाना कर दिया कि उत्तम नस्ल का खरणे का एक ऊँट खरीद कर उसे अमुक स्थान पर छोड़कर निश्चित स्थान पर आकर मिलें। तब उनके साथ केवल मीनाक्षा व मोड़सिंह भवानीपुरा वाले रह गए जो नजदीकी सम्बन्ध से उनके काका थे। इस प्रकार अपने जमाने के उस गर्वीले राजपूत ने शक्तिशाली अंग्रेज सरकार के आदेशों की अवज्ञा करते हुए टॉडगढ़ की नजरबन्दी तोड़ने की पूरी तैयारी कर ली।

10 जुलाई, 1915 को प्रात: टॉडगढ़ के तहसीलदार और सब-इन्सपेक्टर पुलिस, राव गोपालसिंह के पास गए और उन्हें शस्त्र सौंप देने का अजमेर से तार द्वारा प्रेषित सरकारी आदेश सुनाया। सुनते ही वीर का क्षत्रियत्व जाग उठा। उसने अपनी रजपूती का वह नमूना पेश किया जो स्वाधीनता संग्राम के उस इतिहास में एक शानदार ऊँची चट्टान की तरह सदियों तक काल के थपेड़ों को सहता हुआ अमिट बना रहेगा। उसने कड़क कर कहा-''मुझसे शस्त्र लेने वाले तुम कौन होते हो? जाओ अपने अंग्रेज मालिकों को कह दो-गोपालसिंह जीवित रहते अपने शस्त्र कभी नहीं देगा।'' घबराए हुए दोनों अधिकारी बाहर आए और तहसीलदार ने तत्काल कमिश्नर को अजमेर तार दिया-

"Your telegraphic order. Thakur flatly refused to handvovr arms. Looks highly excited."

उक्त दोनों अधिकारियों के बाहर जाने के बाद उनसे शस्त्र लेने के विरोध में, कमिश्नर अजमेर को पत्र लिखकर राव गोपालसिंह ने मद्रासी सज्जन मिनाक्षा के हाथ उक्त पत्र अजमेर भेज दिया और उसे भी अपने घर चले जाने का कह दिया।

मोड़सिंह भवानीपुरा को साथ लेकर नजरबन्दी आदेश की अवज्ञा करते हुए राव गोपालसिंह नजरबन्दी स्थान से निकल पड़े। शस्त्रों से सज्जित, मरने मारने पर उद्यत, अश्वारूढ़ उन दो राजपूतों ने पहरे पर नियुक्त पुलिस प्रहरियों को सचेत करके जंगल का रास्ता पकड़ा। सर्वशक्ति सम्पन्न अंग्रेजी सत्ता को यह बहुत बड़ी चुनौती थी। पहरे पर नियुक्त सिपाहियों ने उन्हें रोकने का साहस नहीं किया। आत्म-सम्मान और क्षात्रधर्म की रक्षार्थ सिर हथेली पर रखकर आगे बढ़ने वाले वीरों को रोकना उनके लिए आसान काम नहीं था। यह भी सम्भव है कि उन सबकी सहानुभूति राव गोपालसिंह के देश हित में किए गए कार्यों के प्रति पहले से ही रही हो।

शेर बंधन तोड़कर पिंजड़े से निकल चुका था। नजरबन्दी से निकल कर वे टॉडगढ़ स्थित तारघर पहुँचे। भारतवर्ष के वायसराय और राजपूताना के ए.जी.जी. को उन्होंने तार दिया–''आत्म–सम्मान और राजपूती की मर्यादा की रक्षार्थ मैं टॉडगढ़ छोड़कर बाहर निकल रहा हूँ। निकट भविष्य में किसी जगह मिलकर अपनी निर्दोषिता सिद्ध करूँगा।'' तत्पश्चात् गर्वोन्नत–ग्रीवा वे दोनों अश्वारूढ़ शूरमा मेरवाड़े के दुरूह पहाड़ी क्षेत्रों में अदृश्य हो गये। (10 जुलाई, 1915)

उनकी रवानगी के 15 मिनट बाद टॉडगढ़–तहसीलदार ने कमिश्नर अजमेर को तार द्वारा सूचना दी–''खरवा ठाकुर मोड़सिंह को साथ लेकर शस्त्रों से सज्जित फरार हो गए हैं और 'बरार' की तरफ चले गए हैं।'' टॉडगढ़ पुलिस सब–इन्सपेक्टर ने भी फरार व्यक्तियों (राव व मोड़सिंह) की तलाश में पुलिस दल भेज देने की सूचना अजमेर के पुलिस सुपरिन्टेण्डेन्ट को लिखकर अपने कर्तव्य की पूर्ति कर ली।

राव गोपालसिंह के टॉडगढ़ नजरबन्दी के उन दस दिनों में (30 जून से 10 जुलाई) अजमेर के सरकारी अधिकारियों के मध्य हुए पत्राचार के अवलोकन से उक्त साहसपूर्ण घटना के संदर्भ में रोचक और रोमांचक जानकारी प्राप्त होती है और यह भी ज्ञात होता है कि अंग्रेज अधिकारी उन 10 दिनों में कितने चिन्तित बने हुए थे।

अत: पाठकों की जानकारी हेतु उस समय के कमिश्नर अजमेर–मेरवाड़ा के कार्यालय की गोपालसिंह की फरारी सम्बन्धी फाईल के कुछ अंश जो कि अंग्रेजी भाषा में हैं उनके कुछ अंशों का हिन्दी आशय यहाँ दिया जा रहा है जो निम्न प्रकार है–

''उनके ग्राम लीड़ी से दो व्यक्ति आये। एक महाजन और दूसरा जाट। मुझे भरोसा नहीं होता कि किसान केवल जमीन के झगड़े की शिकायत करने आये थे। हंसराज ओसवाल का बेटा छोटमल कहता है कि वह केवल अपने खेत पर अपने भतीजे द्वारा दखल की शिकायत करने राव गोपालसिंह के पास आया है। और प्रताप जाट कहता है कि वह अपने खेत जोतने की पुन: आज्ञा लेने गोपालसिंह के पास आया है।

भूपसिंह जो ठाकुर गोपालसिंह का निजी सचिव था टॉडगढ़ से फरार हो गया है। ठाकुर ने उसकी अनुपस्थिति की रिपोर्ट नहीं की है। एक पुलिस इन्सपेक्टर भूपसिंह के बयान लेने वहाँ पहुँचा था, परन्तु उसे वह नहीं मिला। उसके आने से पूर्व ही वह फरार हो चुका था।

जब से दो व्यक्ति (एक महाजन और दूसरा जाट) लीड़ी से ठाकुर साहब से मिलने आए, उसके बाद से वे उद्विग्न नजर आते हैं। हरदम उत्तेजित मुद्रा में सशस्त्र रहते हैं। आशंका है टॉडगढ़ में किसी को हानि न पहुँचा दें अथवा आत्मघात न कर बैठें। एस.पी. होलिन्स ने सुझाव दिया कि उनके पास से हथियार जब्त कर लिए जावें। उक्त सुझाव पर चीफ कमिश्नर ने उनसे शस्त्रास्त्र ले लेने का आदेश प्रसारित कर दिया। जब ठाकुर से शस्त्र सौंपने को कहा गया तो वे क्रोधित हो उठे और शस्त्र सौंपने से साफ इन्कार कर दिया। कमिश्नर अजमेर से उक्त सूचना मिलने पर चीफ कमिश्नर ने अपने पूर्व आदेश को संशोधित करते हुए कमिश्नर को सूचित किया कि उनके पास एक तलवार और दो छर्रा बन्दूकें (शोटगन) रहने दी जावें व शेष शस्त्रास्त्र ले लिए जावें। किन्तु उक्त आदेश टॉडगढ़ पहुँचने से पूर्व ही ठाकुर शस्त्रास्त्रों से लैश होकर मोड़सिंह को साथ लेकर टॉडगढ़ से फरार हो चुके थे।

मेरे नाम टॉडगढ़ से भेजे गए टेलीग्राम (10 जुलाई) से मुझे सूचित किया गया कि ठाकुर शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर मोड़सिंह के साथ दो घोड़ों पर चढ़कर फरार हो गया है। मेवाड़ की सीमा पर स्थित 'बरार गाँव' जो यहाँ से तीन मील दूर है, कि तरफ ठाकुर के जाने की खबर मिली है। इस पर मैंने तत्काल ए.जी.जी. राजपूताना एवं उदयपुर और जोधपुर स्थित रेजिडेन्ट को टेलीग्राम देकर घटना से सूचित किया है। यह भी सूचना मिली कि टॉडगढ़ स्थित पुलिस सब–इन्सपेक्टर पुलिस दल के साथ ठाकुर का पीछा करने गया हुआ है। मैं और मिस्टर हॉलिन्स 10 जुलाई की शाम ब्यावर पहुँचे जहाँ से हॉलिन्स टॉडगढ़ पहुँचे गये हैं।'' **(क्रमश:)**

सत्सङ्गति मुक्ति से भी बढ़कर है

– जयदयाल गोयन्दका

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

(गीता 10/9-10)

वे निरन्तर मुझमें मन लगाने वाले और मुझमें ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन सदा ही मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जानते हुए तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए ही संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेव में ही निरन्तर रमण करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं तत्त्वज्ञान रूप योग देता हूँ जिससे वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।

यहाँ सबसे बढ़कर ध्यान को बताया गया है, पर ध्यान से भी बढ़कर भजन है, क्योंकि भगवान को भजे बिना ध्यान नहीं होता। इसलिये नाम-जप की विशेष महिमा बतलायी गयी है। स्वयं भगवान भी भगवन्नाम की महिमा नहीं गा सकते। फिर मेरी तो बात ही क्या है। तुलसीदास जी ने कहा है-

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।

शेष, महेश, गणेश आदि ने जो कुछ भी भगवन्नाम के विषय में कहा है वह सब थोड़ा ही कहा है। भगवन्नाम की महिमा पूर्ण रूप से कोई नहीं गा सकता। यद्यपि सभी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार नाम की स्तुति गाते हैं, पर वह वास्तव में स्तुति के बदले एक प्रकार से निन्दा ही हो जाती है। इस पर एक बात याद आ गयी, वह कहता हूँ। यह बात शास्त्रीय तो नहीं है लौकिक कल्पना ही है पर दृष्टान्त के लिये अच्छी है।

एक राजकुमार घोड़े पर सवार होकर घूमने जा रहा था। उसका रूप बहुत सुन्दर था। वह सब प्रकार से वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित था। उसके पैरों में स्वर्ण के कड़े थे। राजकुमार धीरे-धीरे जा रहा था। मार्ग में दो मजदूरिनें भी जा रही थीं। उनमें से एक ने कहा देखो, इसने पैरों में सोने के कड़े पहने हैं। बदले में दूसरी मजदूरिन ने कहा कि इनकी क्या बात है, राजा के कुँवर हैं, बड़े आदमी हैं, ये चाहें तो गुड़ के भी बनवा सकते हैं।

बस ठीक यही बात है। ये अपनी समझ में राजकुमार की बड़ाई ही कर रही हैं, पर वस्तुतः उनकी की हुई बड़ाई निन्दा ही है, किन्तु वे क्या करें, उनकी समझ में गुड़ ही सर्वोत्तम और बहुमूल्य वस्तु है। उनको यह पता नहीं कि एक रत्ती सोने में कितना गुड़ आ जाता है। यही हाल हम लोगों का है। हम लोग उस परमात्मा के नाम की स्तुति गाते हैं, पर वह सोने के कड़े से गुड़ की समता करने की तरह निन्दा ही है। तथापि भगवान् समझते हैं, ये बेचारे क्या करें, इनकी जितनी बुद्धि और योग्यता है, उसी के अनुसार ये कहते हैं। इसी प्रकार समझकर वे दयालु प्रभु बारम्बार प्रसन्न होते हैं। जिस प्रकार बच्चों की तोतली भाषा सुन-सुनकर माता-पिता आनन्दित होते हैं। उसी प्रकार वे परमात्मा हमारी टूटी-फूटी और बच्चों की-सी तोतली भाषा में की हुई स्तुति से प्रसन्न होते हैं।

नामजप और सत्संग की बात है। सत्संग से ही नाम में प्रीति होती है। यदि हम सत्संग छोड़ देंगे तो नामजप में विश्वास घट जाएगा। और नामजप होना छूट जाएगा।

सत्संगति मुक्ति से भी बढ़कर है। जो प्रभु की दया के रहस्य प्रभाव को जानता है वही दया का

अनुभव करता है और वही सत्संग को मुक्ति से बढ़कर मानता है। मुक्ति से बढ़कर सत्संग कैसे है? यह बात विचारणीय है। सत्संगति यानी महान् पुरुषों का संग यह बड़े महत्त्व का विषय है, महापुरुषों का महत्त्व क्या बताया जाए। मुक्ति तो उनके चरणों में लौटती है। संसार में एक तो ऐसे पुरुष हैं जो रोजगार करके अपना पेट भरते हैं, दूसरे ऐसे हैं जो केवल भिक्षा पर ही अवलम्बित रहते हैं, तीसरे ऐसे हैं जो दूसरों को खिलाकर फिर खाते हैं, जो सदाव्रत बाँटते हैं। इन तीनों में ऊँचा दर्जा किसको दिया जाए, संसार को खिलाकर खाने वालों को ही तो दिया जाएगा? यहाँ पर सबको खिलाकर भोजन करने वाला वह है जो सबका कल्याण चाहता है और भगवान के देने पर भी मुक्ति ग्रहण नहीं करता। यदि ग्रहण करता है तो सबका कल्याण हो जाने के बाद ही करता है। जब ऐसे भक्त को भगवान् मुक्ति देना चाहते हैं तो वह कहता है– भगवन्! मैं तो केवल सत्संग ही चाहता हूँ, जिसमें दिन-रात आपके गुण, प्रेम, तत्त्व और रहस्य की बातें होती रहे। मेरी इस कामना को चाहे आप सकाम समझें या और कुछ। यदि आपको मेरा भार है तो जिस सत्संग से सारे संसार के जीवों का कल्याण हो जाए, ऐसा सत्संग दीजिये और सारे विश्व के कल्याण के बाद मैं तो हूँ ही। ऐसा समझने वाला प्रभु के समान दयालु हो जाता है। रामायण में अयोध्यावासी प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के प्रति कहते हैं–

स्वारथ मीत सकल जग माहीं।
सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं।।
हेतु रहित जग जुग उपकारी।
तुम तुम्हार सेवक असुरारी।।

हे भगवन्! संसार में सब स्वार्थ के मित्र हैं। बिना किसी हेतु उपकार करने वाले संसार में दो ही हैं, एक आप और दूसरे आपके भक्त।

यदि महात्मा पुरुष भी औरों की तरह यह सोचने लग जावें कि इसमें हमारा क्या लाभ है तो फिर हम कलियुगी जीवों का क्या होगा? महात्मा लोग तो सबके लाभ को ही अपना लाभ समझते हैं, इससे प्रभु प्रसन्न होते हैं। केवल कह देने मात्र से कि हम मुक्ति को ही नहीं चाहते, भगवान प्रसन्न नहीं होते। भगवान के भक्त तो मुक्ति को मन में स्थान देते ही नहीं। उनकी मुक्ति की इच्छा ही नहीं होती और न इसकी चिन्ता ही रहती है। इसको भलीभाँति समझने के लिये यह दृष्टान्त समझना चाहिये। एक धनी, दयालु और दानी मनुष्य सदाव्रत बाँट रहा था, जो भी अनाथ, गरीब, भिक्षु आते, उन्हें भोजन परोसता ही रहता था। पास में ही उसका सेवक खड़ा था, उस धनिक ने उसकी ओर संकेत करके कहा कि तुम जाओ भोजन कर लो। यह सुनकर सेवक ने कहा-स्वामिन्! मैं इन सबके ले लेने के बाद भोजन करूँगा, यह सेवा मुझे दे दीजिये और आप भोजन के लिये जाइये। मैं इन्हें परोस दूँगा, इन्हें पेट भरते देख-देखकर मुझे बड़ा हर्ष होता है, कैसा उत्तम भाव है। वह सोचता है कि स्वामी को अवसर दे दूँ तो वे भोजन कर आयें और मैं इसी बीच में इन्हें परोसकर सेवा करूँ और प्रसन्न होऊँ तथा स्वामी से प्रार्थना करता है कि आपको बहुत देर हो गयी, आप थक गये हैं। अत: भोजन करने जाइये और इन सबको परोसकर मैं भी आता हूँ। मुझे जितना आनन्द इन्हें परोसने में आता है वह आनन्द भोजन में नहीं आता। उसके स्वामी बदले में जो कुछ भी कहते हैं, उसे वह काट देता है और सदाव्रत बाँटने के लिये नियुक्त होने की ही इच्छा रखता है और यही प्रकट करता है। इसी तरह महात्मा पूरे विश्व की मुक्ति चाहते हैं। वे भगवान के मुक्ति देने पर भी नहीं लेते। भगवान की बात को हटाकर यही कहते हैं कि सारे संसार का कल्याण करें, फिर हमारा करें। वर भी माँगते हैं तो यही कि जहाँ घोर नरक है, जहाँ सारे जीव छटपटा रहे हैं, वहाँ भेज दीजिये और वहाँ जाकर आपके नाम गुण का प्रचार

हो तथा सारे जीव मुक्त हो जाएँ, सारा नरक वैकुण्ठ हो जाए। वह महात्मा सोचता है कि जिस प्रकार मैं दुःखी था उसी तरह सब दुःखी हो रहे हैं, रो रहे हैं, चिल्ला रहे हैं। इस प्रकार की अवस्था में मैं इन्हें छोड़कर स्वर्ग जाऊँ या मुक्त हो जाऊँ, मैं ऐसा नहीं चाहता। जब राजा युधिष्ठिर को काल्पनिक नरक दिखाया जा रहा है और राजा युधिष्ठिर नरक के दुःखित जीवों को देखते हुए गमन कर रहे हैं तो नरक के जीव विनयपूर्ण वाणी से प्रार्थना करते हैं–हे राजन्! हमें आपके यहाँ ठहरने से सुख होता है। आपके शरीर को स्पर्श करके आने वाली वायु हमारे दुःखों को मिटाती है और हम लोग बहुत आनन्द का अनुभव करते हैं। नरपते! आप थोड़ी देर और ठहरिये। नारकी जीवों के इस प्रकार के वचनों को सुनकर महाराज युधिष्ठिर पार्षदों से कहते हैं कि आप लोग जाइये, मैं तो यहाँ रहूँगा। यह कहते ही सारा दृश्य बदल गया, इन्द्र प्रकट हो गये और कहने लगे यह तो स्वप्न था, यह नरक केवल काल्पनिक था। यह तो स्वर्ग है नरक नहीं। अर्जुन तो वैकुण्ठ में भगवान के पास है, द्रौपदी लक्ष्मीजी के स्थान में हैं। क्या द्रौपदी अर्जुन आदि नरक में पड़ सकते हैं? कभी नहीं। यह युधिष्ठिर की तीसरी परीक्षा थी कि देखें, ये नरक छोड़कर स्वर्ग की कामना करते हैं या नहीं, महाराज युधिष्ठिर ने स्वर्ग नहीं चाहा, वे तो जीवों के कल्याण की कामना करते हैं, ऐसा उत्तम भाव था।

महापुरुषों का भाव इससे बढ़कर होता है। वे तो यह कहते हैं कि हम पहले मुक्त हो जाएँ और हमारे अन्य भाई दुःख से रोयें हम यह नहीं चाहते। यदि वे महापुरुष मुक्त हो जाएँ और प्रचार कार्य न करें तो फिर जीवों की अवस्था बिल्कुल कष्टमयी हो जाए। भगवान अपनी भक्ति का प्रचार स्वयं नहीं करते, भक्तों के द्वारा ही कराते हैं। दयालु भक्त भी भक्ति के प्रचार के लिये मुक्ति को ठुकराकर केवल उस सत्संग के आनन्द का अनुभव करना चाहते हैं, जिस सत्संग में मुक्ति का सदाव्रत बँटता है। भगवान तो केवल उसको देखते रहते हैं, देख-देखकर प्रसन्न होते रहते हैं और मौका देखकर स्वयं उसमें भाग लेने की भी इच्छा रखते हैं। जैसे काशी में शिवजी मुक्ति का सदाव्रत बाँटते हैं, वृन्दावन में गोपियों की चरण रज में मुक्ति का सदाव्रत सन्निहित है और वह सदा बँटता रहता है। क्या कोई यह जानकर भी कहेगा कि पहले हमारा कल्याण हो? कल्याण की इच्छा ही क्यों हो, सबका कल्याण हो यह कैसा उत्तम भाव है, ऐसा ही भाव होना चाहिये। प्रह्लाद के समान भाव होना चाहिये। भगवान के सामने भक्त कहता है भगवन्! यदि मुक्ति बुरी चीज है तो मुझे क्यों दी जाती है? और यदि उत्तम है तो फिर सबको पहले दी जाए, क्योंकि वे अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं फिर मुझे दीजिये।

महात्मा लोग सबको देकर ही खाते हैं, द्रौपदी सबको भोजन करवाकर ही भोजन करती थी। एक बार दुर्वासा ऋषि शिष्यों के साथ आये। महाराज युधिष्ठिर ने भोजन का निमंत्रण दे दिया। वे सब संन्धया-पूजन करने नदी चले गये। द्रौपदी से पता किया तो उसने कहा-मैं तो भोजन कर चुकी, अब क्या उपाय है? वनवास के समय सूर्य भगवान ने पाण्डवों को एक पात्र दिया था, जिसमें पकाया हुआ अन्न द्रौपदी के भोजन करने के पूर्व समाप्त नहीं होता था। द्रौपदी ने भगवान को पुकारा, भगवान प्रकट हो गये, कहा द्रौपदी भूख लगी है। द्रौपदी ने कहा महाराज खाने को कुछ नहीं है। भगवान ने कहा-यह विनोद का समय नहीं है, मुझे बहुत जोर से भूख लगी है पात्र लेकर आओ। उसमें एक पत्ता साग का मिल गया, भगवान ने भोग लगाया और संकल्प किया **'विश्वात्मा तृप्यताम्'** सारा विश्व तृप्त हो गया। भगवान ने सहदेव को कहा दुर्वासा को बुलाओ। वहाँ नदी पर दुर्वासा आदि सबके पेट भर गये। दुर्वासा जी ने शिष्यों से

कहा ये भगवान के भक्त हैं, अब यहाँ से भागो, कहीं भोजन न करने पर वे रुष्ट न हो जाएँ, सब भाग गये। वहाँ कोई नहीं मिला, वापस आकर सहदेव ने कहा-वहाँ कोई नहीं है। भगवान पर विश्वास है, निश्चिन्त हैं। भोजन की कोई व्यवस्था नहीं है, किन्तु भगवान ने कहा बुलाओ तो बुलाने चले गये। द्रौपदी का कैसा उत्तम भाव था कि सबको भोजन कराकर भोजन करना। तभी तो भगवान उसके वश में थे। यज्ञ से बचे हुए, सबके भोजन कराने के अनन्तर बचे हुए अमृत को ग्रहण करने वाले पुरुष मुक्ति प्राप्त करते हैं।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

(गीता 3/13)

यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपना शरीर-पोषण करने के लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।।

(गीता 4/31)

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञ से बचे हुए अमृत का अनुभव करने वाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं। और यज्ञ न करने वाले पुरुष के लिये तो यह मनुष्य लोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक हो सकता है?

महात्मा लोग यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाते हैं इसीलिये तो वे सन्त हैं। जहाँ मुक्ति का सदाव्रत बँटे वह तो महायज्ञ है।

भक्त तो यह कहता है कि प्रभो! आप मुझे सन्त बताते हैं और संत का लक्षण आपने उपर्युक्त श्लोक में इस प्रकार बतलाया है। जो अपने लिये ही पकाते हैं वे पापी तो पाप को ही पकाकर खाते हैं, तब फिर प्रभो! मैं यदि मुक्ति लेकर अपना ही स्वार्थ सिद्ध करूँ तो इस हिसाब से मैं तो पापी रहा और आप सन्त कहते हैं। यदि आप मुझे पापी बतलाते हैं तब तो चाहे मुक्ति दे दीजिये और जब आप मुझे सन्त कहते हैं तो पहले सबको मुक्ति देकर तत्पश्चात् मुझे दीजिये। मेरी प्रार्थना यही है कि मुझे पापी न बनाकर सन्त बनाइये।

दयालु महात्मा ही ऐसा समझते हैं कि सत्संग ही सबसे बढ़कर है, पर यह मिले कैसे? वह मिलता है उन मालिक की कृपा से, प्रभु की दया से। महापुरुषों की दया भी उनकी दया से ही होती है।

जाकर कृपा राम की होई।
तापर कृपा करहिं सब कोई।।

प्रभु की दया तो है ही, पर हम मानते नहीं यही कमी है। उसकी कृपा-दया मान लेनी चाहिये। अपने ऊपर तुम प्रभु की जितनी दया मानोगे, उससे भी बहुत अधिक दया तुम्हारे ऊपर है। किन्तु हम लोग केवल कह देते हैं कि मानते हैं, असल में मानते नहीं हैं, यदि मान लें तो फिर कल्याण होने में क्या विलम्ब है?

हम चाहते हैं भजन निरन्तर होता रहे, पर मन इधर-उधर भाग जाता है, इस कारण नहीं कर पाते। प्रभु की दया का महत्त्व समझना चाहिये। यह समझना चाहिये कि भजन अपने प्रयत्न से नहीं होता, भगवान की दया से ही होता है। हम भगवान की दया मानते ही नहीं, धोखे से कह देते हैं कि भगवान की बहुत दया है। दया मानने का यह प्रमाण है कि हमें क्षण-क्षण में इतना आनन्द होगा कि हमारी तो बात ही क्या है? हमें देख-देखकर दूसरे मुग्ध हो जाएँ। भगवान की दया का अनुभव करते रहने पर चिन्ता, शोक, भय कैसे हो सकते हैं? चिन्ता-शोक तो पीछे लगे हुए हैं और मानते हो प्रभु की दया, यह कैसे हो सकता है?

परमात्मा ने दया करके हमें मनुष्य-शरीर दिया है। मनुष्य बनाने के कारण ही मुक्ति का अधिकार दे दिया। यह तो उस प्रभु की अहैतुकी दया का ही फल है जो हमें मनुष्य-शरीर मिला है। मनुष्य जन्म हुआ

उसी दिन प्रभु की पूर्ण कृपा हो गयी, फिर भी यदि हमें भगवत्प्राप्ति न हो तो समझना चाहिये कि हम उनकी दया को ठुकरा रहे हैं। प्रभु हमारे मस्तक पर अपना हाथ रखते हैं और हम उसे हटाते हैं, कहते हैं हमें नहीं चाहिये तुम्हारी दया, यह निरी मूर्खता के सिवाय और क्या हो सकता है?

भगवान ने दया की, मुनष्य-शरीर दे दिया, वह भी आर्यावर्त उत्तम देश भारतवर्ष, उत्तम काल कलियुग का समय जिसमें सभी प्राणी केवल भगवन्नाम-कीर्तन से ही वह पद पा सकते हैं, जिसे सत्ययुग, त्रेता, द्वापर में साधक क्रमशः ध्यान, यज्ञ और पूजा से प्राप्त करते थे।

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।।

(श्रीमद्भागवत 12/3/52)

सत्ययुग भगवान का ध्यान करने से, त्रेता में बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा उनकी आराधना करने से और द्वापर में विधिपूर्वक उनकी पूजा-सेवा से जो फल मिलता है, वह कलियुग में केवल भगवन्नाम का कीर्तन करने से ही प्राप्त हो जाता है।

ऐसे सुलभता से भगवत्प्राप्ति होने वाले काल में जन्म, वह भी उत्तम वर्ण में, प्रभु ने तो हम पर पूर्ण दया कर दी, ऐसी दया को पाकर भी जो उसे नहीं चाहते, उलटा उसे ठुकराते हैं, उनका क्या हाल होता है? तुलसीदास जी कहते हैं-

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मन्दमति आत्माहन गति जाइ।।

ऐसे आत्मघातियों की क्या दशा होती है?

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृत्ताः।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।

(ईशा 03)

असुरों के (जो) प्रसिद्ध नाना प्रकार की योनियाँ एवं नरक रूप लोक हैं वे सभी अज्ञान तथा दुःख-क्लेश रूप महान अन्धकार से आच्छादित हैं। जो कोई भी आत्मा की हत्या करने वाले मनुष्य हों वे मरकर उन्हीं भयंकर लोकों को बार-बार प्राप्त होते हैं।

भगवान की इतनी दया रहते हुए भी यदि हमें अधोगति को जाना पड़े यह उचित नहीं है, बहुत ही निकृष्ट बात है। अतः प्रभु की दया माननी चाहिये। प्रभु की दया मानने पर उनका निरंतर चिन्तन तो होगा ही, हम थोड़ा-सा उपकार करने वाले को भी जब नहीं भूलते हैं तो इतने बड़े उपकारी को हम कैसे भूल सकते हैं, यदि भूलते हैं तो हम कृतघ्न हैं।

वास्तव में भगवत्प्राप्ति हमारे कर्मों से तथा पुरुषार्थ से नहीं होती, वह तो प्रभु की दया से ही होती है। भरत जी कहते हैं-

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी।।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ।।
मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई।।

भगवान का नाम पतित पावन है, पर हम अपने को पतित नहीं समझते, तब भगवान किसे पावन करें। प्रभु तो फिर भी हम पर दया ही करते हैं। यदि हम अपने को पतित मान लें तो उद्धार होने में विलम्ब ही क्या है। हम तो अपने को श्रेष्ठ समझते हैं। अपने को तृण से भी नीच कहाँ मानते हैं? भरतजी अपने को पतित मानते थे, अवगुणी मानते थे, प्रभु के आने में विलम्ब केवल इसीलिये है कि हमारा विश्वास नहीं है। प्रभु तो एक बार नामोच्चारण से ही आ जाते हैं पर विश्वास नहीं है। भगवान तो आने को तैयार हैं, पर हमें विश्वास नहीं है तो कैसे आयें?

प्रभु की सबके ऊपर पूर्ण दया है, उन्होंने दया का भण्डार खोल दिया है। जो भगवान की दया को समझ लेता है उसे फिर भय कैसे छू सकता है। राजा की मैत्री हो जाने पर हम निर्भय हो जाते हैं, चित्त से चिन्ता भाग जाती है और जिस प्रभु की दया के सामने राजा की मैत्री कुछ भी नहीं है, उस स्वामी की इतनी

दया हो फिर तो हमको किसी काल में भी भय नहीं होना चाहिये। यदि भय होता है तो अज्ञता है, हम दया के रहस्य को समझते ही नहीं। भक्त तो स्त्री, पुत्र, धनादि की हानि होते देख-सुनकर प्रसन्न होता है। मेरा परम हित किस बात में है इस बात को प्रभु ही जानते हैं। उनकी मेरे पर अपार दया है। वह तो अपने-आपको, अपने सर्वस्व को, अपनी सारी चेष्टाओं को उन परमात्मा के चरणों में समर्पित कर देता है। यह बात **'मग्दतप्राणा:'** से सूचित होती है। सारी चेष्टाओं को भगवदर्पण करना। यह सर्वस्व अर्पण का भाव है। सत्संग के प्रताप से, **'बोधयन्त: परस्परम्'** की सच्चर्चा के प्रताप से एवं प्रभु की दया से ये दोनों मिलते हैं अब रहा **'कथयन्तश्च'**, यह भी प्रभु की दयासे ही मिलता है। भगवान कहते हैं -

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तम:।
भविता न च मे तस्मादन्य: प्रियतरो भुवि।।

(गीता 18/69)

जो इस अमृत स्वरूप गीता-धर्म का प्रचार करता है, उससे बढ़कर मेरा कोई भी प्रिय न है, न हुआ और न होगा। देखिये कितनी सुन्दर बात है? गोपियाँ भगवान को प्रिय थीं, पर भगवान ने यह कहीं नहीं कहा कि उनसे बढ़कर भविष्य में कोई मेरा प्रिय नहीं होगा, किन्तु यहाँ भगवान ने यह कहा कि जो इस गीता शास्त्र में कथित धर्म का प्रचार करेगा, उससे बढ़कर कोई मेरा प्रिय न हुआ, न है और न होगा। ऐसे प्रचार करने वाले भक्त ही तो सदाव्रत बाँटने वाले हैं। वे नहीं चाहते कि पहले हमें मुक्ति दी जाए। वे तो परदु:ख को देखकर दयार्द्र हो जाते हैं और उन्हें मुक्ति का सदाव्रत बाँटकर ही प्रसन्न होते हैं और इसी में संतुष्ट रहते हैं। **'तुष्यन्ति च रमन्ति च'** ऐसे महापुरुषों के सत्संग के लिये ही तो यह कहा गया है-

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

वे महापुरुष केवल सत्संग में मुग्ध रहते हैं और उनकी उस मस्ती को देखकर दूसरे भी मुग्ध हो जाते हैं। केवल मुग्ध नहीं रहते, बल्कि गोपबालों की तरह उन प्रभु की लीला में भाग लेते हैं, उनके साथ क्रीड़ा करते हैं, नाचते हैं और नाचते-नाचते कह उठते हैं कि एक बार नरक में भी हो लें, जिससे वहाँ के जीवों का कल्याण हो जाए।

पृष्ठ 9 का शेष

पृथ्वीराज चौहान

के बीच दो मुख्य युद्ध बताते हैं। इनके अतिरिक्त कम से कम 6-7 छोटी मोटी झड़पें (मुख्य रूप से सीमा क्षेत्रों में) भी हुई जिनमें स्वाभाविक है कि स्वयं पृथ्वीराज और गोरी नहीं अपितु उनके अधिकारी लड़े थे। भारतीय पक्ष (भाटों) ने इन सभी झड़पों को युद्ध बना दिया जहाँ चौहानों को हर बार विजय मिली और मुस्लिम इतिहासकारों ने इस पर मौन धारण कर लिया। पर आगे हम देखेंगे कि इन कथानकों के प्रचलन में आने के बाद कुछ साक्ष्य ऐसे भी निकले हैं जिनसे पृथ्वीराज गोरी का एक और संभावित पूर्ण युद्ध होता है, बाकी दोनों से पहले 1182-83 ई. में। भाटों का जैनियों के साहित्य में पृथ्वीराज द्वारा गोरी को बार-बार हरा और पकड़ कर छोड़ देने की अतिशयोक्ति में सत्य का बीज यही युद्ध है, इसलिए हम आगे पढ़ेंगे।

उद्धरण : 1. खंड 1, पृष्ठ 95, 2. तबकात इ नासिरी, अनुवाद-रेवर्टी, पृष्ठ 451, 3. एपिग्राफिया इंडिका खंड 62, मार्च 1933, पृष्ठ 42, पंक्ति 9-10, 4. पृथ्वीराज चौहान एंड हिज टाइम्स, रामवल्लभ सोमनी, पृष्ठ 40-42, 5. एपिग्राफिया इंडिका खण्ड 37, पृष्ठ 279, 6. सर्ग-10, श्लोक 40, 7. विस्तृत नोट पृथ्वीराज चौहान-ए लाइट ओनदी मिस्ट इन हिस्ट्री के पृष्ठ 63 पर पढ़ें, 8. तबकात इ नासिरी, अनुवाद-रेवर्टी, पृष्ठ 453, 9. वही, रेवर्टी का दिया उद्धरण, पृष्ठ 453, 10. वही, पृष्ठ 453।

विचार सरिता

(अशीतिः लहरी)

– विचारक

प्राणीमात्र को बन्धन स्वीकार्य नहीं है। हर प्राणी मुक्त होना चाहता है पर सामान्य प्राणियों के पास विवेक का अभाव होने से वे बन्धनकारी जीवन को ही जीवन मानकर भोग भोगते रहते हैं। समस्त योनियों में सर्वश्रेष्ठ कही जाने वाली मनुष्य योनि ही एकमात्र ऐसी योनि है जिसके पास उचित-अनुचित, योग्य-अयोग्य, सत्-असत् का विवेक है। हर मनुष्य का विवेक सोया हुआ रहता है किन्तु शुभ कर्मो के प्रभाव से और परमात्मा की कृपा से जिनको सत्संग मिल जाती है, उनका विवेक जग जाता है। जगे हुए विवेक से ही उसे ज्ञात होता है कि आत्मा क्या है, अनात्मा क्या है? विनाशी क्या है और अविनाशी कौन है? इसका ठीक-ठाक ज्ञात होना ही जगे हुए विवेक का लक्षण है। विवेक के बारे में विचारसागर में आया है-

अविनाशी आतम अचल, जग तातैं प्रतिकूल।
ऐसा ज्ञान विवेक है, सब साधन का मूल।।

जब तक विवेक जागृत नहीं होता है तब तक साधक की ऊर्धवगामी यात्रा शुरू ही नहीं होती। जीवन का यह प्रथम सोपान ठीक-ठीक सध जाए तो मुक्ति-चाह भी प्रबल हो सकती है। जब तक चाह नहीं तो राह भी नहीं। साधक के लिये आत्मज्ञान ही इस भवबन्धन से मुक्त होने का आश्रय है। यह आत्मज्ञान ही परब्रह्म की प्राप्ति है। निष्काम कर्म और ज्ञान के द्वारा ही परब्रह्म को जानना चाहिए। जीवों की मुक्ति के लिये जितने रास्ते हैं, उन सब में ज्ञान ही प्रधान है। आत्मा और अनात्मा के ज्ञान के लिए यदि हम इस दृष्टान्त के माध्यम से समझेंगे तो क्षीर-नीर की भान्ति आत्मा और अनात्मा को समझने में सुगमता रहेगी।

अनात्मा कहे जाने वाला यह शरीर रथ है, आत्मा रथ का स्वामी अर्थात् रथी है। प्रारब्ध में संयुक्त पाप और पुण्य रूपी रथ के दो पहिये हैं जिससे यह रथ गति कर रहा है। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण रूपी ध्वजा जो रथ पर अस्थिर होकर फहरा रही है। जाग्रत, स्वप्न, सुषोप्ति और तुरीय रूपी चारों अवस्थाओं का व्यवहार इस रथ में होता रहता है। पांच प्राणों से यह रथ बन्धा हुआ है जिससे इस रथ को मजबूती मिली हुई है। पाँच ज्ञानेन्द्री और पाँच कर्मेन्द्री रूपी दस घोड़े इस रथ को खींच रहे हैं। पाँच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध) घोड़ों के दौड़ने के मार्ग हैं। रथ को हाँकने वाली सारथी के रूप में बुद्धि है। जिसके हाथ में मन रूपी लगाम है जिससे यह बुद्धि इन्द्रियों को जिस ओर ले जाना चाहे, उधर हाँकती रहती है। इस रथ की प्रकृति विकारयुक्त है, यह इन छः विकारों से युक्त है- जन्मना, मरना, भूख, प्यास, हर्ष और शोक ये इसमें दुःखरूप विकार हैं। इस रथ में जो सामग्री लगी हुई है, जिसे शास्त्रों में सप्तधातु के नाम से संबोधित किया गया है-वे है- रोम, त्वचा, मांस, रुधिर, मज्जा, हड्डी और वीर्य। इन सात धातुओं में चार धातु माता की तथा तीन धातु पिता की कही गई है। इस रथ के नौ द्वार प्रकट दिखाई देते हैं और एक दसवां द्वार ब्रह्मरंध्र में है जो जीवनमुक्त महात्मा अन्त समय में अपने प्राणों को उस दसवें द्वार से छोड़ता है। जिससे उस ज्ञानी पुरुष की विदेहमुक्ति होती है। अर्थात् वह सदैव के लिये निर्बन्धन होकर जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है।

इस प्रकार इस देह के समस्त स्थूल और सूक्ष्म पुर्जो के बारे में जो जानता है तथा इसमें होने वाले समस्त विकारों तथा गतिविधियों को जो जानता है वह चेतन-आत्मा इसमें रहते हुए भी शरीर के धर्मो से रहित है। ऐसे असंग आत्मा में वृत्ति की स्थिति जिसकी स्थिर हो जाती है वह शरीर के मरण काल में कभी भी अपनी मृत्यु नहीं मानता। शरीर की मृत्यु को वह घट-दृष्टावत उस मृत्यु का साक्षी बनकर स्थिर रहता है। ऐसी जीवन जीने की कला जिस साधक को गुरुकृपा से अनुभूत हुई है वही मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ योगी कहलाने का अधिकारी है। ऐसे योगियों के जीवनरूपी वृक्ष पर अमररूपी फल की प्राप्ति होती है। उस अमरफल के चखने से ही अमृत्व मिलता है। देह में रहते हुए देही के दीदार करने वाले ऐसे समस्त योगियों के चरणों में मेरा श्रद्धावत नमन!

ओम् नारायण! नारायण!! नारायण!!!

होली की राम-राम

– क्षिप्रा लोहरवाड़ा-लूंछ

होली की 'राम-राम'। हाँ, सही सुना आपने 'राम-राम'। अब जब मैंने 'हैपी होली' या 'होली मुबारक' नहीं बोला तो आप मुझे अनपढ-जाहिल मत समझ लेना। पढाई की अच्छी डिग्री है मेरे पास, पर सोच जरा पारम्परिक रखती हूँ।

राम-राम कहने में जो आनन्द है वह अंग्रेजी या उर्दू के शब्दों में कहाँ? एक घटना याद आ रही है। एक बार मेरे नानीसा आए हुए थे, हम दोनों मंदिर जा रहे थे। सामने से एक बुजुर्ग महिला आ रही थी। भाभू (मेरी नानीसा) ने पास आने पर उनको राम-राम कहा। उस महिला ने भी आँखों में चमक भरकर मुस्कराते हुए राम-राम कहा और अगले 10-15 मिनट के समय में दोनों ने बहुत ही अपने पन से बातें की, जैसे कोई बिछुड़ी हुई सहेलियाँ मिली हों अब उसने राम-राम कहकर विदा ली। मैं असमंजस में थी कि भाभू की कोई जानकर यहाँ कैसे हो सकती है? मैंने पूछा-भाभू आप जानते हो इनको? जो जवाब मिला वह बड़ा आनन्द दायक था। एक बुजुर्ग को दूसरी बुजुर्ग के लिये कहा-'बूढी डोकरी ही, राम-राम कर लिया तो राजी हो गई, थोड़ी बात कर ली।' देखा न कि प्यार भरा एक राम-राम कितना आनन्द देता है। मैं उनको बात करते हुए देख रही थी कि अनजानेपन का भाव ही नहीं था उसमें। आज भी जब मैं किसी बुजुर्ग महिला को देखकर राम-राम करती हूँ, तो उनकी आँखों में वही चमक नजर आती है और मिलता है ढेर सारा आशीर्वाद।

इसी के साथ एक और बात याद आती है। 18-19 वर्ष पूर्व जो संघशक्ति कार्यालय जयपुर में रहते थे, वे भी जरूर जानते होंगे कि सुबह-सुबह लगभग 5 बजे से 7 बजे के बीच एक आवाज सुनाई देती थी-राम-राम, राम-राम। वह ऊर्जावान आवाज कभी तेज होती, कभी धीमी, पर आती थी। बोलने वाले की शक्ल तो नहीं दिखाई दी पर जिस दिन आवाज सुनाई नहीं देती, उस दिन अच्छा नहीं लगता था। फिर एक दिन वह आवाज हमेशा के लिये ही बंद हो गई, राम जाने राम के पास गई या जगह बदल गई। लेकिन एक जुड़ाव हो गया था उस राम-राम की आवाज से और आज तक याद आती है।

आजकल चर्चा होती है कि त्योहार पर पहले जैसा आनन्द नहीं आता। आएगा भी कैसे? 'हैपी होली' अंग्रेजी के ये शब्द कोई सकारातमक ऊर्जा उत्पन्न ही नहीं कर पाते। जी हाँ, शब्दों की भी ऊर्जा होती है। 'राम-राम' कहने से ऊर्जा उत्पन्न होती है। मैंने स्वयं ने यह अनुभव किया है कि मैं जब अभिवादन स्वरूप किसी को राम-राम बोलती हूँ तो उसके मस्तिष्क में एक हल्की-सी तरंग उठती है जो उसके चेहरे पर मुस्कान के साथ मुँह से राम-राम के रूप में प्रकट होती है।

वैसे भी त्योहार पर हम राम-राम (रामा-श्यामा) करने ही तो जाते हैं। राम मतलब आराम, राम यानी आनन्द, राम अर्थात् सकारात्मक ऊर्जा, राम मतलब स्थिरता, राम अर्थात् अपनापन, राम मतलब निरन्तरता, राम अर्थात् शान्ति। राम नाम में क्या नहीं है? यह तो पूरी सृष्टि है। तो चलिए आज से बोलते हैं-नये चाँद की 'राम-राम'', नए साल की 'राम-राम', होली की 'राम-राम', दीपावली की 'राम-राम'। जब इस अभिवादन के साथ हम अपने सभी सम्बन्धियों से मिलते हैं तो अनायास ही 'राम' नाम के अजपा जप का लाभ हमें मिलता है। कैसे? तो देखो उस लेख में मैंने राम नाम लिखा 51 बार और आपने पढ़ा और आपको पता ही नहीं चला।

तुष्टीकरण की नीति : शिक्षा बंटाढ़ार

– गुमानसिंह धमोरा

आज शिक्षा में वोट की राजनीति के कारण धर्म, जातिवाद, सम्प्रदायवाद को महत्त्व दिया जाने लगा है, परिणामस्वरूप हमारी शिक्षा ज्ञान न देकर धर्म, जाति व सम्प्रदायवाद का तुष्टीकरण मात्र रह गई है। आज की प्रारम्भिक शिक्षा में, जहाँ छात्र का मन कोरे कागज की तरह होता है-संस्कार व नैतिकता की शिक्षा नहीं दी जाती बल्कि राजनीति की घटनायें, राजनीति में रहे राजनेताओं के बारे में बढ़-चढ़कर पढ़ाया जाता है। हमारे आदर्श पुरुष राम, कृष्ण, गौतम, नानकदेव, शिवाजी व राणा प्रताप न होकर गाँधी-नेहरू हो गये हैं।

मुझे याद है हमें बचपन के (प्राथमिक पाठशाला में) पाठ्यक्रम नैतिकता, संस्कार व त्याग की शिक्षा देने वाले पाठ हुआ करते थे जैसे- राजा शिवि, सिद्धार्थ का शरणागत की रक्षा करना, एक चिड़िया के बच्चे चार, सुदामा श्रीकृष्ण प्रसंग, राम की आज्ञाकारिता, लक्ष्मण का भ्रातृ प्रेम, हनुमान का सेवाभाव, भीष्म की प्रतिज्ञा, शेर का जाल से चूहे द्वारा छुटकारा, वफादार दुर्गादास, पन्नाधाय का त्याग, नमक का दारोगा (प्रेमचन्द) व झूठा गड़रिया आदि। बाल मन पर इन शिक्षाओं की अमिट, स्थायी छाप अंकित हो जाती थी। उपरोक्त विषयों को आज गौण माना जा रहा है और 'ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार', 'बाबा बाबा ब्लेकशिप' आदि निरर्थक पाठों ने जगह ले ली है। ऊँची कक्षाओं में भी विदेशी लेखकों की कहानियाँ उपन्यास पाठ्यक्रम में शामिल किये जाते हैं जिनके पात्रों व जगहों के नाम व वर्तनी (Spelling) भारतीय परिवेश के छात्रों के पसीने छुड़ा देते हैं और अंग्रेजी भाषा का भूत जैसा डर सताने लगता है। छात्रों को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान देने के लिये व उनके पाठ्यक्रम में शामिल करने के लिये भारत में अंग्रेजी भाषा में लिखने वाले लेखकों की कमी नहीं है। कृष्णचन्द्र, विक्रम सेठ व चेतन भगत जैसे अच्छे लेखक हैं और नहीं भी हों तो हिन्दी व अन्य भारतीय भाषा के लेखकों के सृजन जिसमें भारतीय परिवेश व पात्रों के कृत्य व महानता झलकती हो और शिक्षाप्रद भी हो, उन्हें अंग्रेजी में अनुवाद कर पाठ्यक्रम में शामिल किया जा सकता है।

मेरे दसवीं के अंग्रेजी पाठ्यक्रम (1961-62) में दो पुस्तकें थीं-'Adventures of Veer Vikramaditya' और चक्रवर्ती राजगोपाला चारी द्वारा लिखित (तमिल से अंग्रेजी में अनुदित) 'Mahabharat' (संक्षिप्त रूप में)। इनमें इनके पात्रों को न याद करने की आवश्यकता थी और न ही वर्तनी में उलझने की।

उपरोक्त वर्णित कठिनाईयों की वजह से छात्र संस्कारित भी नहीं हो पाते और न ही भारतीयता का ज्ञान हो पाता और एक बड़ी समस्या गले पड़ जाती है कि "अंग्रेजी बहुत कठिन है" सोचकर अंग्रेजी हव्वा बन जाती है जबकि शुद्ध हिन्दी अंग्रेजी से कठिन है। परिणाम यह होता है कि हम रट रटा कर जैसे-तैसे परीक्षा तो उत्तीर्ण कर लेते हैं लेकिन अंग्रेजी भाषा का ज्ञान जितना समय छात्र ने इसे पढ़ने में लगाया उसके अनुरूप नहीं हो पाता। भारतीय छात्र (अपवाद को छोड़कर) BA, MA करने के बाद भी अंग्रेजी बोलना तो दूर, ढंग से लिख भी नहीं पाता। साधारण निम्बन्ध रटा रटाया हो तो भले लिख ले लेकिन तथ्यपूर्ण निम्बन्ध नहीं लिख पाता।

अत: भारतीय शिक्षा प्रणाली में भारतीयता का समावेश करने के लिये आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

गुब्बारा

– नीरसिंह सिंघाना

दुनियां में हम कई तरह के गुब्बारे देखते हैं। एक रबर का गुब्बारा होता है जो विभिन्न रंगों में उपलब्ध होता है। जिसमें हवा भर कर उड़ाया जाता है। अपनी सुन्दरता से लोगों को विशेष रूप से बच्चों को आकर्षित करता है। जन्मदिन, शादी व अनेक शुभ अवसरों पर सजावट करके अवसर को खुशनुमा बनाया जाता है। दूसरा गुब्बारा गैस भरकर आकाश में उड़ाया जाता है। जिसके सहारे व्यक्ति को आसमान की सैर करवाई जाती है। तीसरी तरह का गुब्बारा आज कल की आधुनिक कारों में लगाया जाता है। जिससे गाड़ी के टकराने पर खुल कर यात्रियों की जान बचाने का काम होता है।

और भी कई तरह के गुब्बारे होते हैं जिनका अलग-अलग उपयोग किया जाता है। इन सबको हम भौतिक आँखों से देख भी पाते हैं। परन्तु एक गुब्बारा ऐसा होता है जिसे भौतिक आँख से देखा नहीं जा सकता। वह गुब्बारा है, प्रशंसा का गुब्बारा।

दुनियां में अधिकतर लोग ऐसे होते हैं जो थोड़ी-सी सेवा, दान या उपकार के बदले अपनी प्रशंसा सुनना पसंद करते हैं। ऐसे लोगों से काम लेना हो, तो बार-बार प्रशंसा करनी पड़ती है। तब ही ऐसे लोग समाज सेवा का छोटा-मोटा काम करते हैं।

यह एक ऐसा गुब्बारा है, जो बाकी के गुब्बारों से विपरीत स्वभाव का है। बाकी उपरोक्त गुब्बारों में यदि सीमा से ज्यादा हवा या गैस भर दी जाए तो फट जाते हैं। किन्तु प्रशंसा के गुब्बारे में बार-बार प्रशंसा नहीं भरो तो यह फट जाता है और उसमें से निकलता है, गुस्सा, नाराजगी, अकर्मण्यता और पलायन।

कहा जाता है कि व्यक्ति की बुराई उसके मुँह पर करनी चाहिए और प्रंशसा पीठ पीछे होनी चाहिए। मुँह पर बुराई करने पर व्यक्ति या तो अपनी कमी को समझकर उसमें सुधार का प्रयास करेगा या अहम् के कारण हमसे नाराज हो जाएगा। एक बार नाराज भी हुआ, तो कालान्तर में समझ आने पर फिर से हमसे जुड़ सकता है। किन्तु प्रशंसा मुँह पर करने से रोग बढ़ता ही जाता है, जिसका कोई अन्त नहीं होता। पीठ पीछे प्रशंसा करने से व्यक्ति को कई तरह के लाभ मिलते हैं। एक तो अच्छा काम करने वाले की समाज में पैठ बनती है। ऐसे व्यक्ति से दूसरे लोग प्रेरणा लेकर उस मार्ग पर बढने का प्रयास करते हैं। जिससे समाज में सेवाभाव विकसित होता है। दूसरा सम्बन्धित व्यक्ति का सम्मुख प्रशंसा सुनने पर जो अहम् पनपता है, जिसके कारण उसका विकास रुक जाता है, उससे बच पाता है, अन्यथा प्रशंसा के रोग से लम्बे समय तक ग्रसित रहने पर गर्त में जाने की सम्भावना बढ जाती है।

समाज सेवा का काम करते हुए हर छोटी-मोटी गलती पर भी डाँट-फटकार सुनकर अपने आप में सुधार लाने में जो आनन्द है, वो प्रशंसा सुनकर कदमताल करने में कहाँ। मुझे यदि प्रशंसा का रोग लग गया है तो श्री क्षत्रिय युवक संघ में जाकर छैनी-हथोड़े की चोट सहने के लिये अपने आपको प्रस्तुत करूँ। भगवान मुझे सद्बुद्धि दें।

आचरण केवल मन के स्वप्नों से कभी नहीं बना करता।
उसका सिर तो शिलाओं के ऊपर घिस घिसकर बनता है।

– सरदार पूर्णसिंह

अपनी बात

श्री क्षत्रिय युवक संघ के संरक्षक माननीय भगवानसिंह जी ने कई बार कहा है कि पू. तनसिंहजी कहा करते थे कि परमतत्व की प्राप्ति के मार्ग पर अंत:करण की शुद्धि आवश्यक है। परमतत्व की प्राप्ति के लिये योगी जन यत्न करते हैं लेकिन जिन्होंने अपने अंत:करण को शुद्ध नहीं किया है ऐसे अज्ञानीजन यत्न भले ही करें, इस आत्मा को नहीं जानते ऐसा गीता भी कहती है। यत्न ही काफी नहीं है। यत्न जरूरी तो है परन्तु केवल ध्यान पर्याप्त नहीं है। उस मार्ग पर बढने के लिये प्रयास तो सघन करना पड़ेगा, लेकिन अकेला प्रयास ही काफी नहीं है, हृदय की शुद्धि भी चाहिए। बहुत बार ऐसा ही होता है कि लोग सिर्फ प्रयास करते रहते हैं, बिना इस बात की फिक्र किए कि भाव शुद्ध नहीं है, हृदय शुद्ध नहीं है। इसके परिणाम भयानक हो सकते हैं।

बुरे से बुरा व्यक्ति भी एकाग्रता साध सकता है। एकाग्रता का बुराई से कोई लेना देना नहीं है, बल्कि बुरा आदमी शायद ज्यादा आसानी से एकाग्रता साध सकता है। क्योंकि वह जिस काम में लगता है, पागल की तरह लगता है। वह जिद्दी होता है क्योंकि बुराई बिना जिद्द के नहीं की जा सकती। उसके लिये हठयोग बिल्कुल आसान है। साधारण व्यक्ति हठयोग करेगा तो लगेगा क्यों सताएँ इस शरीर को। क्यों इतना आसन लगाकर बैठो, पैर दुखने लगते हैं, आँखों से आँसू झरने लगते हैं। बुरा आदमी इनकी फिक्र नहीं करता। वह दूसरे को भी सता सकता है, उतनी मात्रा में खुद को भी सता सकता है।

अगर एक दुष्ट हत्यारा एकाग्रता साधे तो साध सकता है। लेकिन उसकी एकाग्रता से खतरा होगा। क्योंकि एकाग्रता से शक्ति आएगी और हृदय शुद्ध नहीं है। उस शक्ति का दुरुपयोग होगा। अगर कोई व्यक्ति बहुत एकाग्रता साधता हो तो उसके वचन में एक शक्ति आ जाती है। जो सामन्यतया दूसरों के वचन में नहीं होती। उसका वचन सामने वाले के हृदय के अन्तस्तल तक प्रवेश कर जाता है। वह जो भी कहेगा, उसके पीछे बल होगा। अगर एकाग्रता साधने वाला व्यक्ति कह दे किसी को कि तुम कल मर जाओगे, तो बचना मुश्किल हो जाता है। इसलिए नहीं कि उसके कहने में कोई जादू है, बल्कि एकाग्रता साधने से उसके कहने में इतना बल है कि वह बात अगले के हृदय में गहरे तक प्रवेश कर जाती है। उसका तीर गहरा है, एकाग्र है और उसने वर्षों तक अपने को साधा है। वह एक विचार पर अपनी पूरी शक्ति को इकट्ठा कर लेता है। तब उसका विचार अगले के लिये एक सुझाव बन जाता है। उसकी आँखें, उसका व्यक्तित्व, उसका ढंग, उसकी एकाग्रता, उसकी अखंडता, उस विचार को तीर की तरह अगले के हृदय में चुभा देगी। फिर अगला चाहे लाख कोशिश करे, उस विचार से छुटकारा मुश्किल है।

हर प्रकार की साधना में एकाग्रता तो आवश्यक ही है लेकिन एकाग्रता के यत्न के साथ अगर हृदय की शुद्धि नहीं हुई तो साधना सात्विक नहीं हो सकती। श्री क्षत्रिय युवक संघ की साधना परमतत्त्व की ओर बढने की ही है अत: अन्त:करण की शुद्धि भी अत्यन्त आवश्यक है। निरन्तरता के साथ अपना अन्तरावलोकन करते रहने के लिये इसीलिए जोर दिया जाता है। हमारे भावों की शुद्धि हो, हमारे हृदय की शुद्धि हो। हृदय की शुद्धि का अर्थ है भावों की निर्मलता। बच्चे जैसा हृदय हो जाए। कठोरता छूटे, क्रोध छूटे, ईर्ष्या-द्वेष छूटे, घृणा-वैमनस्य छूटे, अहंकार छूटे और हृदय शुद्ध हो, साथ में यत्न हो। यत्न और शुद्ध भाव। संघ के इस साधना मार्ग में अपने को पूर्णतया निमज्जित करने में जुटे रहें। ●

शिविर सूचना

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं -

क्र.सं.	शिविर	समय	स्थान, मार्ग आदि
01	प्रा.प्र.शि. (बालक)	13.4.2022 से 19.4.2023	तिलोकपुरा, जिला-सीकर
02	उ.प्र.शि. (बालक)	18.5.2023 से 29.5.2023	भवानी निकेतन, जयपुर

18 मई को प्रात: 8 बजे तक शिविर स्थल तक पहुँचना है। पूर्व में दो प्रा.प्र.शि. व एक मा.प्र.शि. किए हुए हों तथा दसवीं की परीक्षा दी हुई हो। पूरा शिविर नहीं करने वाले पूर्व अनुमति लेकर 23 मई को आ सकेंगे। 29 मई से पूर्व जाने की स्वीकृति नहीं होगी। शिविर शुल्क प्रति शिविरार्थी 100 रुपये शिविर में देय होगा। निर्देशिका, झनकार, मेरी साधना व साधना पथ पुस्तकें तथा निर्देशिका में शिविर हेतु वर्णित सामग्री साथ लेकर आनी है। सायंकालीन प्रार्थना की गणवेश धोती-कुर्ता व केशरिया साफा होगी एवं प्रात:कालीन प्रार्थना में संघ की गणवेश अनिवार्य है।

03	मा.प्र.शि. (बालिका)	23.5.2023 29.5.2023	भवानी निकेतन, जयपुर

पूर्व में न्यूनतम दो शिविर किये हुए हों। दसवीं की परीक्षा दी हुई हो। शिविर शुल्क प्रति शिविरार्थी 50 रुपये शिविर में देय होगा। निर्देशिका में शिविर हेतु वर्णित सामग्री एवं संघ की गणवेश साथ लेकर आनी है। सायंकालीन प्रार्थना में यथासंभव परम्परागत केशरिया गणवेश लेकर आयें। विवाहिता महिलाएँ वे ही शामिल हो सकेंगी जिनको आमंत्रित किया जाएगा। बालिकाओं के साथ आने वाले व वापस लेकर जाने वाले स्वयंसेवकों को भी पूर्व अनुमति लेना आवश्यक होगा एवं उनकी भी गणवेश आवश्यक है।

दीपसिंह बेण्याकाबास

शिविर कार्यालय प्रमुख, श्री क्षत्रिय युवक संघ

फार्म-4 (नियम-8)

1.	प्रकाशन स्थान	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
2.	प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
4.	प्रकाशक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
5.	सम्पादक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार व हिस्सेदार हों।	:	पूर्ण स्वामित्व-श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर

मैं एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

1-4-2023 **लक्ष्मणसिंह,** प्रकाशक

जय एकलिंग जय क्षात्र धर्म जय बायण माता

मिटे तो हुआ क्या,
निशानी है बाकी......
कथाकार सोये,
कहानी है बाकी......

श्री तनसिंह जी शताब्दी वर्ष पर हार्दिक शुभकामनाएं

जौहर अग्नि में पवित्र हुई वीरांगना माताओं व केसरिया बाना धारण कर अमर हुये रणबांकुरों को हमारे परिवार की ओर से जौहर दिवस पर हार्दिक श्रद्धान्जली अर्पित।

अंबिका मार्बल माइंस, सावर

भुवनेश्वरी फिलिंग स्टेशन, सावर

भूपेंद्र सिंह शक्तावत
पूर्व प्रधान केकड़ी
मो. 9829291789

हेमेंद्र सिंह शक्तावत
मो. 99280 80425

पुष्पेंद्र सिंह शक्तावत
पूर्व सरपंच सावर
मो. 9829015599

श्रीमती आशा कंवर
पूर्व जिला परिषद सदस्या
अजमेर

अप्रेल, सन् 2023

वर्ष : 60, अंक : 04

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60

डाक पंजीयन संख्या – Jaipur City /411/2023-25

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह